साधन त्रिवेणी

मानव सेवा संघ, वृन्दावन

साधन-त्रिवेणी

मानव सेवा संघ-प्रणेता के जीवनदायी विचार

मानव सेवा संघ प्रकाशन

वृन्दावन

☆ *प्रकाशक :*

मानव सेवा संघ,

वृन्दावन

☆ प्रथम संस्करण : 3000 प्रतियाँ

☆ : Rs 20 00

होली-उत्सव : 2006

☆ *मुद्रक :*

पावन प्रिन्टर्स

मेरठ

प्रार्थना

मेरे नाथ,

आप अपनी सुधामयी, सर्व समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से दुःखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल एवं सुखी प्राणियों के हृदय में सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन कर कृतकृत्य हो जाएँ।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

मानवता के मूल सिद्धान्त

1. आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में, अपने दोषों को देखना।
2. की हुई भूल को, पुनः न दोहराने का व्रत लेकर, सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।
3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर, अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।
4. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवत्-चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा, अपना निर्माण।
5. दूसरों के कर्त्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।
6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी, पारिवारिक भावना के अनुरूप ही, पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी, स्नेह की एकता।
7. निकटवर्ती जन-समाज की, यथाशक्ति, क्रियात्मक रूप से सेवा करना।
8. शारीरिक हित की दृष्टि से, आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।
9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान शून्य करके, अपने को सुन्दर बनाना।
10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्त्व देना।
11. व्यर्थ-चिन्तन-त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाना।

प्रार्थना

मेरे नाथ,

आप अपनी सुधामयी, सर्व समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से मानव मात्र को विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणा सागर ! अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही राग-द्वेष का नाश करें। सभी का जीवन सेवा-त्याग-प्रेम से परिपूर्ण हो जाए।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

वस्तु खिंचती है धरती की ओर
मनुष्य खिंचता है अनन्त की ओर

प्राक्कथन

परम कृपालु प्रभु की अहैतुकी कृपा से मानव-सेवा-संघ का नवीनतम प्रकाशन सत्संग-प्रेमी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है। **'साधन-त्रिवेणी'** में आधुनिक युग के महान् तत्त्ववेत्ता, क्रान्त द्रष्टा, सन्तप्रवर ब्रह्मलीन स्वामी शरणानन्द जी महाराज के जीवनदायी विचारों को संकलित किया गया है।

मानव-सेवा-संघ के प्रणेता सन्त ने अपने प्रवचनों में जिस सर्वजनोपयोगी, मत मतान्तरों के दुराग्रहों से मुक्त विचारधारा को प्रकट किया है, उसमें सर्वत्र मानव-जीवन की महिमा का दर्शन होता है। उनकी विचारधारा का केन्द्र है मानव। मानवमात्र जन्मजात साधक है। वह जब मानवता को प्राप्त कर लेता है तो देवताओं से भी उच्च पद प्राप्त कर लेता है तथा मानवता से रहित होने पर पशु से भी निकृष्ट हो जाता है। सेवा, त्याग और प्रेम से युक्त मानवता में ही जीवन की पूर्णता निहित है। स्वामी जी ने स्थान-स्थान पर मानवता की इस महिमा का ही गुणगान किया है।

मानव-जीवन की पूर्णता इसमें है, कि उसका शरीर जगत् के काम आ जाए, उसका हृदय प्रभु-प्रेम से भर जाए तथा त्याग द्वारा स्वाधीन होकर आत्म-संतुष्ट हो जाए। परमात्मा की सुन्दरतम रचना-मानव, सेवा के द्वारा जगत् के लिए उपयोगी हो सकता है, त्याग के द्वारा अपने लिए उपयोगी हो सकता है तथा प्रेम के द्वारा सर्वाधार सर्वेश्वर को भी रस प्रदान कर

सकता है। मानव-सेवा-संघ का उद्देश्य है—व्यक्तिगत कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण। मानव अपना कल्याण करने के साथ-साथ विश्व शान्ति की समस्या के समाधान में भी सहायक हो सकता है।

'साधन-त्रिवेणी' पुस्तक साधन-पथ के पथिक भाई-बहनों के जीवन-पथ को आलोकित करे इसी सद्भावना के साथ—

—विनीत

अद्वैत चैतन्य

अनुक्रम

1.	जीवन का सत्य	9
2.	हमारी आवश्यकता	18
3.	सेवा ही जीवन का सार सर्वस्व	23
4.	सत्संग मानव का स्वधर्म	31
5.	स्वाधीनता, उदारता और प्रेम	34
6.	धर्म-विज्ञान	43
7.	सच्चा साधक कौन ?	55
8.	विवेक और विश्वास	70
9.	साधना-पथ की बाधाएँ	80
10.	प्रभुप्रेम की विलक्षणता	96
11.	विश्व-शान्ति	99

जीवन का सत्य

आपके जीवन का जो सत्य है, वह आपके पुरुषार्थ का फल नहीं है। यह तो आपको स्वतः प्रदान किया गया है। यह ज्ञान से सिद्ध है कि. मेरा कुछ नहीं है; मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मेरा किसी वस्तु पर अधिकार नहीं है—यह ज्ञान से सिद्ध है। और यह ज्ञान आपको मिला है। ऐसे ही प्रभु मेरे अपने हैं—यह आस्था से सिद्ध है। यह आस्था का तत्त्व आपको मिला है। ऐसे ही बल के सदुपयोग से विश्वशान्ति की समस्या हल होती है, यह बल आपको मिला हुआ है। बल आपको मिला हुआ है, ज्ञान आपको मिला हुआ है; आस्था आपको मिली हुई है। यह जो बल, ज्ञान और आस्था का तत्त्व आपके जीवन में है, यह आपके किसी कर्म विशेष का फल नहीं है।

यदि कर्म विशेष का यह फल होता तब तो आप ऐसे यन्त्र बना सकते थे, जिनसे आपको आस्था, ज्ञान और बल मिल जाता। हाँ, बल के सदुपयोग से बल मिलता है, ज्ञान के सदुपयोग से मुक्ति मिलती है, आस्था के सदुपयोग से भक्ति मिलती है—यह आपके जीवन का अनुभव सिद्ध सत्य है। तो मूल बल आपको मिलता है आपको भेंट किया जाता है। ऐसे ही मूल ज्ञान आपको मिलता है; मूल विश्वास आपको मिलता है। तो मिले हुए मूल बल के द्वारा आप संसार के काम आएँ; मूल ज्ञान के द्वारा आप निर्मम, निष्काम, असंग हो कर मुक्त हो जाएँ और मूल विश्वास के द्वारा आप प्रभु से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करके भक्त हो जाएँ। अब आप देखिए न, ये तीनों बातें आपने अपने द्वारा की। कौन-कौन सी ? बल के दुरुपयोग न करने का निर्णय अथवा बल के सदुपयोग के अभिमान और फल का त्याग, यह आपने अपने द्वारा किया। मैं बल का दुरुपयोग नहीं करूँगा यह निर्णय करने में शरीर की सहायता नहीं लेनी पड़ी; इसमें

संसार की सहायता नहीं लेनी पड़ी। मैं बल के सदुपयोग का फल नहीं माँगूँगा, इसका अभिमान नहीं करूँगा, इसमें आपको शरीर और संसार की सहायता अपेक्षित नहीं हुई।

तो जो अपने द्वारा किया जाएँ उसी को सत्संग कहते हैं। और सत्संग क्या हैं? सत्संग माने मनुष्य का स्वधर्म। तो जो आपने बल का दुरुपयोग छोड़ दिया; सदुपयोग का फल और अभिमान छोड़ दिया, तो आपका संसार से सम्बन्ध टूट गया। देखिए, संसार से सम्बन्ध टूट गया; संसार नहीं छूट गया। एक बात और, संसार का सम्बन्ध ही बाधक था संसार बाधक नहीं था। हमारी साधना में संसार का सम्बन्ध बाधक है; संसार बाधक नहीं है। इसलिए संसार का सम्बन्ध टूटने से साधना में जो बाधा थी, वह नष्ट हो गई।

अब बाधा का नाश तो हो गया, अब इसका विकास क्रम क्या होगा—इस पर थोड़ा विचार कीजिए। जिस समय बल के दुरुपयोग को छोड़ कर उसके फल और अभिमान को छोड़ देंगे तो आप थोड़ी देर के लिए अपने को अपने में सन्तुष्ट पाएँगें। तो संसार से सम्बन्ध टूटने का फल क्या हुआ कि मानव अपने में अपने को सन्तुष्ट पाता है। अब अपने में अपने को संतुष्ट पाने का फल क्या है? अपने में जो अपना जीवन है वह उसे प्राप्त हो जाएगा। अपने में अपना जो परमात्मा है वह उसे प्राप्त हो जाएगा या अपने में जो अपने सर्व दुःखों की निवृत्ति है, वह उसको प्राप्त हो जाएगी या अपने में जो अपना आनन्द है वह हमको प्राप्त हो जाएगा।

यह जो अनेक ढंग से एक बात कही गई, यह अनेक मान्यताओं के कारण कही गई। नहीं तो, सीधी बात यह है कि बुराई-रहित होकर, भलाई का फल और अभिमान छोड़ कर साधक अपने में संतुष्ट होकर सब कुछ पा जाता है। इतना कहना पर्याप्त था। लेकिन आप लोगों के मस्तिष्क

में विभिन्न विचार अंकित होते हैं इसलिए सभी दृष्टियों से विवेचन की जरूरत होती है।

अपने में सन्तुष्ट हुए बिना भगवान बुद्ध का 'निर्वाण' सिद्ध नहीं होगा, शंकराचार्य का निजानन्द सिद्ध नहीं होगा और चैतन्य महाप्रभु का प्रेम सिद्ध नहीं होगा। ये तीनों सत्य तभी सिद्ध होंगे, जब हम अपने को अपने में सन्तुष्ट पायेंगे। और अपने को अपने में तभी सन्तुष्ट पाएँगे जब आप संसार के सम्बन्ध से मुक्त हो जाएँगे। संसार के सम्बन्ध से तभी मुक्त होंगे जब आप बुराई-रहित होकर भलाई के फल और अभिमान को छोड़ देंगे। यह वास्तव में सम्पूर्ण जीवन की साधना का क्रम आपकी सेवा में निवेदन किया।

अब आप दूसरी दृष्टि से सोचिए, कि आप बुराई-रहित होना तो चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। या भलाई का अभिमान और फल छोड़ना तो चाहते हैं, पर छोड़ नहीं पाते। यानी जो चाहते हैं सो कर नहीं पाते। इसका परिणाम क्या होना चाहिए? इसका परिणाम यह होना चाहिए कि हम भले ही कर न पायें परन्तु जीवन की जो माँग है, उससे निराश तो न हो जाएँ। यदि हम निराश नहीं होंगे और अपने द्वारा करने में अपने को असमर्थ पाएँगे तब अपने आप एक वेदना जाग्रत होगी। यह वेदना ईश्वरवादी की प्रार्थना है, यह वेदना अध्यात्मवादी की साधना है और यह वेदना भौतिकवादी की उदारता है, करुणा है। तो यह वेदना जाग्रत होनी चाहिए। कौन-सी वेदना? अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने की वेदना, अपनी निर्बलता का अनुभव करने पर जो वेदना होती है वह वेदना तो जाग्रत होनी चाहिए।

आप कहेंगे कि अगर हमने जो करना चाहिए वह कर लिया तो वेदना नहीं होगी, लक्ष्य की प्राप्ति होगी। लक्ष्य की प्राप्ति होने के

बाद—सभी को लक्ष्य प्राप्त हो जाए—यह वेदना होगी। इसी बात को बताने के लिए किसी लेखक ने लिखा था कि भगवान बुद्ध कहते हैं कि जो मानव उस जीवन का अधिकारी हैं, जहाँ पराधीनता का, अशान्ति का, जड़ता का, अभाव का और नीरसता का प्रवेश ही नहीं हो सकता; जो मानव इतने ऊँचे जीवन का अधिकारी है, वही मानव आज अपनी ही भूल से कीड़े-मकौड़ों की तरह जीता है। क्या है यह? क्या यह वेदना नहीं हैं? मैं यह निवेदन कर रहा था कि जो सही कर्त्तव्य-पालन करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें इस तरह की वेदना होती है कि सभी को सफलता मिलनी चाहिए।

ऐसे पर-दुःख-कातर व्यक्तियों को समाज ने महापुरुष कहा। उनको समाज ने कभी महापुरुष नहीं कहा जिनके जीवन में समाज के हित का उत्तरदायित्व नहीं जगा। जिन्होंने समाज को विश्वास दिलाया कि जो जीवन मुझे मिला है वह तुम्हें भी मिल सकता है उनको समाज ने कभी नापसन्द नहीं किया।

इसलिए महानुभाव, आप अपने ही द्वारा बुराई-रहित होकर धर्मात्मा हो सकते हैं, धर्म के अभिमान और फल को छोड़ कर आप मुक्त हो सकते हैं, और मुक्ति से मुक्त हो कर आप भक्त हो सकते हैं। भक्त होने से आप में भक्ति-रस की अभिव्यक्ति हो सकती है और भक्ति-रस की अभिव्यक्ति से आप भगवान को रस दे सकते हैं या भक्तिरस से भगवान को रस मिलता है।

तो मनुष्य का जो भगवान के साथ सम्बन्ध है, वह भगवान से कुछ माँगने के लिए नहीं है; भगवान का प्रेमी होने के लिए है; और मनुष्य का जो सम्बन्ध संसार के साथ है, वह संसार से कुछ लेने के लिए नहीं है अपितु उदार होने के लिए है। अब आप सोचिए, भगवान के लिए हम

प्रेमी हो जाएँ, संसार के लिए हम उदार हो जाएँ। यह कब होगा? जब संसार से हम कुछ न चाहें और भगवान से भी हम कुछ न चाहें।

अब आप देखिए, जिसे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, वह अशान्त होगा क्या? वह पराधीन होगा क्या? वह देहाभिमानी रहेगा क्या? उसका देहाभिमान भी गल जाएगा, पराधीनता भी मिट जाएगी, अशान्ति भी मिट जाएगी। समस्त विकार नाश हो जाएँगें और वह निर्विकार जीवन से अभिन्न होकर कृतकृत्य हो जाएगा। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो आपके इस मानव-जीवन का बड़ा भारी महत्त्व है। आप संसार के लिए उदार हो सकते हैं, प्रभु के लिए प्रेमी हो सकते हैं और आप अपने लिए अचाह हो सकते हैं।

लेकिन अचाह का अर्थ बड़ा पेचीदा है। पैर में दर्द हो रहा है, डॉक्टर मौजूद है। अब हम कैसे कहें, कैसे दिखाएँ, यह कैसे कहें कि हमारे पैर में दर्द है, देख लीजिए। क्यों? ऐसा कहने से अगर उसने नहीं देखा, तब तो बड़ा अपमान हो जाएगा। लेकिन अपमान तब हो जाएगा, जब आप यह समझेंगे कि यह मेरा पैर है। अरे भाई यह उसी का पैर है, जिसका डॉक्टर है। तो डॉक्टर किसी बीमार के कष्ट को नहीं देखेगा, तो परमात्मा के विधान को तोड़कर वह परमात्मा का अपमान करेगा कि आपका अपमान करेगा। लेकिन अगर आपको अपमान मालूम होता है तो इसलिए मालूम होता है क्योंकि आप परमात्मा की वस्तु को अपनी वस्तु मान लेते हैं।

अगर आपकी कोई शारीरिक सेवा करता है तो आप उसके उपकार को इसलिए नहीं मानते कि उसने सेवा की है आप उपकार को इसलिए मानते हैं क्योंकि शरीर को आपने अपना माना है। ऐसे ही सेवा करने वाला अगर आप पर एहसान करता है, तो वह सेवा नहीं करता वह परमात्मा की दी हुई वस्तु को अपनी मान कर बेईमान बन कर संसार में मिथ्या

अभिमान करता है। तो मैं यह निवेदन कर रहा था आपसे, कि ये सारी बातें क्यों नहीं जीवन में आती? इसलिए नहीं आती कि सचमुच हम अचाह हो कर रहते ही नहीं। हम निर्मम होकर रहते ही नहीं।

अगर हम अचाह होना पसन्द करें, अगर हम निर्मम होना पसन्द करें तो हमारा करके कुछ है ही नहीं और हमें संसार से कुछ चाहिए ही नहीं, तो संसार हमारा क्या अपमान करेगा? संसार हमें क्या हानि पहुँचाएगा? न हानि पहुँचाएगा और न अपमान करेगा। संसार तब अपमानित करेगा जब संसार की वस्तु को अपना मानेंगे, जो संसार से कुछ चाहेगा। संसार की वस्तु का उपयोग संसार की सेवा में करना और संसार के लिए संसार से भिक्षा माँगना यह अपमान तो नहीं है, बन्धन तो नहीं है।

जो उनका अपना बनाया हुआ बन्धन है। जो सम्पत्ति, योग्यता, वस्तु को अपनी मान कर, उन पर अधिकार जमा कर उसका उपयोग करते हैं वह बन्धन अपना मानने में है या अपना न मानने में है। तो आपको साफ दिखाई देगा कि अपना न मानने में बन्धन नहीं है। अपना न मानने में अशान्ति नहीं है। अपना न मानने में अगर बन्धन नहीं है, अशान्ति नहीं है तो फिर क्या है? शान्ति है, स्वाधीनता है।

जहाँ शान्ति और स्वाधीनता है वहाँ हम प्रेमी हो सकते हैं, उदार हो सकते हैं। अगर हमारे जीवन में शान्ति नहीं है, अगर हमारे जीवन में स्वाधीनता नहीं है, तो हम सच्चाई के साथ न तो उदार हो सकते हैं, न प्रेमी हो सकते हैं और न अचाह हो सकते हैं।

इस प्रकार जब हम सबकी बुद्धि सम हो जाए यानी विवेकवती हो जाए तो हृदय अनुरागी हो जाएगा और अहं अभिमान-शून्य हो जाएगा। प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए आप परमात्मा से सम्बन्ध स्वीकार करें। स्वीकार करना कोई क्रिया थोड़ा ही है। जैसे आपने अपनी माँ को माँ स्वीकार किया, बाप को बाप स्वीकार किया, भाई को भाई स्वीकार किया

वैसे ही आप परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्वीकार करें। यह सम्बन्ध जोड़ने की स्वाधीनता तो आपको है न? जैसे मेरी माता है, मेरे पिता हैं, मेरे भाई है, मेरे बन्धु हैं ऐसे ही मेरे प्रभु हैं।

जैसे आप धन की महिमा को मानते हैं कि धन होगा तो काम चल जाएगा ऐसे ही प्रभु की महिमा स्वीकार करें और फिर परमात्मा की प्राप्ति की आवश्यकता अनुभव करें। स्वीकृति तो तुम्हारे अपने द्वारा ही होगी। देखो अगर क्रिया के द्वारा काम बन जाता तो, आज के वैज्ञानिक युग में ऐसे यन्त्र बन जाते कि यन्त्र के द्वारा गायत्री मंत्र सिद्ध हो जाता। लेकिन जो अपने द्वारा करने वाली बात है वह क्रिया के द्वारा कैसे हो जाएगी भाई?

मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आपका ज्ञान, ध्यान और जीवन एक हो जाना चाहिए। जिस प्यार से ध्यान करो उसी प्यार से काम हो जाए, जिस प्यार से काम करो उसी प्यार से ध्यान हो जाए। ये अलग-अलग नहीं हैं। हम लोग जो अलग-अलग मान लेते हैं कि ध्यान अलग चीज है और ज्ञान अलग चीज है। सो नहीं है। दोनों एक ही चीज हैं। ज्ञान आपको क्या प्रेरणा देता है? ज्ञान आपको प्रेरणा देता है निर्मम होने की, निष्काम होने की। ध्यान आपको क्या प्रेरणा देता है? शान्त होने की। काम भी करो और शान्त भी रहो तथा निर्मम भी हो जाओ। तब ज्ञान, ध्यान और कर्म एक हो जाते हैं।

काम तो होता ही पराश्रय और परिश्रम से है। काम माने पराश्रय और परिश्रम। पराश्रय और परिश्रम का स्थान है पर-सेवा में—शरीर की सेवा में, परिवार की सेवा में, समाज की सेवा में, विश्व की सेवा में। बिना दूसरे को हानि पहुँचाए जो कार्य है वह सेवा है। और दूसरों को हानि पहुँचा कर जो कार्य है वही भोग है। पर-सेवा के लिए आप स्वाधीन है, भोग के लिए नहीं। पराश्रय और परिश्रम का उपयोग है पर-सेवा में। पर-सेवा में आप भलाई चाहे जिस के साथ करें लेकिन बुराई आप किसी

के साथ न करें। तो बुराई न करना यह विश्व की सेवा है, भलाई करना यह परिवार, समाज और देश की सेवा हैं, अचाह होना अपनी सेवा है और प्रेमी होना प्रभु की सेवा है। तो सेवा आप चाहे जिस की करें। अभी प्रभु की सेवा करने की फुर्सत न हो, तो कोई चिन्ता की बात नहीं है, अपनी सेवा करें और अपनी सेवा की फुर्सत न हो शरीर की, समाज की परिवार की सेवा करें परन्तु हानि तो किसी को न पहुँचाएँ।

देखो आफिस की पराधीनता थोड़ी देर की छह घण्टे की तो अट्ठारह घण्टे तो आप स्वाधीन हो। पराधीन कौन होता है? जिसे अपने में यह अनुभव है कि मेरा कुछ है वह सबसे बड़ा पराधीन है? और मुझे कुछ चाहिए वह उससे बड़ा पराधीन। जो निर्भय और निष्काम है वही स्वाधीन होता है। परिस्थिति में सब पराधीन रहते हैं।

आप विचार करके देखो—शरीर संसार की शक्तियों के अधीन है। आफिस का काम तो आप आफिस के समय पर ठीक कर दो, पूरी शक्ति लगा दो, आदरपूर्वक कर दो, पवित्र भाव से कर दो। इस प्रकार पराधीनता पर-सेवा में व्यय कर दो। मुश्किल तो तब है न, जब आपके कार्य का कोई लक्ष्य न हो।

आप इस दृष्टि से ठीक-ठीक कर्त्तव्यपालन कीजिए तो मुश्किल बहुत आसान हो जाएगी। हानि बिना पहुँचाए कोई काम करोगे तो वह सेवा हो जाएगी।

देखिए जर्मन बरबाद हुआ और हिन्दुस्तान आजाद हुआ। जर्मन लोगों ने आठ-आठ घण्टे में दस-दस घण्टे, बारह-बारह घण्टे काम किया और वहाँ के कारखानों में लाखों का फायदा हुआ और हिन्दुस्तान के लोगों ने बोनस माँगना शुरु कर दिया। काम करना कम कर दिया और लाखों का नुकसान हुआ। जो काम तुम्हें मिला है तुम अपने काम को ठीक-ठीक ईमानदारी से पूरा कर दो। तुम संसार के ठेकेदार नहीं हो। ज्यादा तो तुम

कर ही नहीं सकते। आठ घण्टे काम करते हैं तो उसके बाद काम करने की तबियत ही नहीं होती। अभी अमेरिका से एक आदमी आया तो उसने कहा कि अमेरिका में सप्ताह में दो दिन की छुट्टी होती है लेकिन वहाँ आठ घण्टे काम करते हैं। इस प्रकार वह सप्ताह में चालीस घण्टे काम करते हैं और हिन्दुस्तान में सप्ताह में 25 घण्टे काम करते हैं। यहाँ एक दिन की छुट्टी होती है तब भी 25 घण्टे से ज्यादा काम करते ही नहीं। यह काम करने की पद्धति में अन्तर है।

क्रियात्मक सेवा निकटवर्ती प्रिय जनों की करो और भावात्मक सेवा सारे संसार की करो। किसी का बुरा मत चाहो यह भावात्मक सेवा हो गई और यथाशक्ति किसी की मदद कर दो यह क्रियात्मक सेवा हो गई। यथाशक्ति किसी की सहायता कर दी, यह क्रियात्मक सेवा हो गई। किसी को बुरा न समझो, यह भावात्मक सेवा हो गई। बुराई न करना यह क्रियात्मक सेवा हो गई। बुराई न चाहना, यह भावात्मक सेवा हो गई।

*****

• *परिवर्तनशील जगत की प्रत्येक वस्तु निरन्तर काल-रूप अग्नि में जल रही है, अतः वर्तमान में ही योग्यतानुसार प्रयत्न कर प्रेमपात्र से अभेद होने का प्रयत्न करना चाहिए।*

हमारी आवश्यकता

मानव जन्मजात साधक है। साधक की क्या क्या आवश्यकता है इस सम्बन्ध में विचार करने से ऐसा लगता है कि साधक के सामने सबसे बड़ी समस्या क्या है? एक समस्या तो मुझे यह मालूम होती है कि साधक के सामने मौलिक प्रश्न है देहाभिमान गलित होने का। दूसरा प्रश्न है अप्राप्त परिस्थिति के चिन्तन का। अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन न रहे। तीसरा प्रश्न यह है कि जीवन में नीरसता न आए। और चौथा प्रश्न है कि अभाव का अन्त हो जाए। ये चार समस्याएँ साधक के सामने रहनी चाहिए। इन समस्याओं का हल होना सम्भव है।

अब देहाभिमान-रहित होने के लिए कोई उपाय नहीं है सिवाय इसके कि वह अकिंचन और अचाह हो जाए। और कोई उपाय ही नहीं है। कितना ही तप करे, कितनी ही योग्यता का सम्पादन करे, बलपूर्वक कितनी प्रकार की साधनाएँ करे, लेकिन जब तक अकिंचन और अचाह नहीं होगा तब तक देहाभिमान का नाश नहीं होगा। अर्थात् जब तक यह निर्णय न करे कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए।

देह के तादात्म्य से ही देह का अभिमान उत्पन्न होता है और देह के अभिमान से ममता और कामनाओं का जन्म होता है। देह-अभिमान का परिणाम क्या है—ममता और कामना। इनकी निवृत्ति कैसे होगी? जब यह विचार करके देखें कि भई, सृष्टि एक इकाई है और इसी के अन्तर्गत मिला हुआ शरीर है, मिली हुई वस्तु है, मिली हुई योग्यता है। तो सृष्टि कहो, चाहे वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य कहो, क्या फर्क पड़ता है।

हमसे गलती क्या होती है कि यह सृष्टि है, इस बात को भूल जाते हैं और इसके अन्तर्गत अपनी सृष्टि अलग बनाते हैं। जो प्राकृतिक सृष्टि है यह एक इकाई है। इसमें अपनी एक शक्ल बनाते हैं, मैं अमुक हूँ, मेरा

यह है। जहाँ 'मैं' है और 'मेरा यह है' वहाँ अनेक प्रकार की कामना पैदा होती है। कामना पैदा होने से पूर्ति-अपूर्ति का सुख-दुःख पैदा होता है। सुख-दुःख के द्वारा ही देहाभिमान पुष्ट होता है। तो अगर हमारे सामने देहाभिमान-रहित होने का प्रश्न है तो आप सोचिए।

आज हमको एक घटना सुनने को मिली कि किसी साधक ने किसी साधिका से माता जी कह दिया तो वह नाराज हो गईं—"तुमने मुझे माता जी क्यों कह दिया नाम क्यों नहीं लिया।" मैं आपसे निवेदन करता हूँ हमने अपने बचपन में धर्मात्माओं से सुना था कि अपने बराबर वाली माँ हो सकती है, बड़ी माँ हो सकती है, छोटी बहन हो सकती है। तो हमें तो बगैर पढ़े-लिखों की बात मालूम थी कि अपरिचित स्त्रियों के साथ इसी भावना से व्यवहार किया जा सकता है। ऐसे ही एक साधक को किसी ने नौकर कह दिया, जैसा मैंने सुना। मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जो यह समझते हैं कि साधक एक नौकर है, उनकी बड़ी भारी भूल है। मानव-सेवा-संघ के अनुसार मानव-सेवा-संघ साधकों का संघ है। साधक यहाँ का मालिक है चाहे एक दिन के लिए आया हो, चाहे हजार दिन के लिए आया हो, चाहे वर्षों से काम करता हूँ, चाहे आज काम आरम्भ किया हो। साधक माने मानव-सेवा-संघ का मालिक क्योंकि यह साधकों का संघ है, किसी व्यक्ति का तो है नहीं। तो साधक को नौकर कहने से, हमने सुना कि उस साधक को बड़ा कष्ट हो गया। उनको 'माता जी' सुनने से कष्ट हो गया और इन्हें 'नौकर' सुनने से कष्ट हो गया। मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस कष्ट का कारण क्या है? देहाभिमान के सिवाय कोई ओर कारण है क्या?

देहाभिमान जो होता है, वह अपनी रुचि के विरुद्ध बात सुन नहीं सकता। हम आपको क्या बताएँ, जिन लोगों ने भिक्षा माँग कर खाया है उन भिक्षा माँगने वालों को ऐसे ऐसे कटु शब्द सुनने को मिलते हैं कि

जिसकी हद नहीं। तो उन विरक्त महात्माओं को क्रोध क्यों नहीं होता, क्षोभ क्यों नहीं होता? तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि इस घटना को सुनकर मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि बेचारा साधक ऐसा अनुभव क्यों करता है? देखो, मानव-सेवा-संघ की साधन-प्रणाली में दुःख का मूल भूल है। अगर हमारी भूल नहीं है तो हमारे जीवन में दुःख हो ही नहीं सकता। जैसे कि यह भूल थी कि 'माता जी' कहने से बिगड़ गईं और शरीर बन गई साढ़े तीन हाथ की और साधक की भूल थी कि 'नौकर' कहने से बिगड़ गए और साढ़े तीन हाथ के शरीर बन गए। तो मैं आपसे बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करना चाहता हूँ कि साधक के सामने देहाभिमान-रहित होने का पहला प्रश्न है। आप किसी काल में देह नहीं हैं। मानते हैं तब भी नहीं है नहीं मानेंगे तब भी नहीं हैं। पहले भी नहीं थे, आगे भी नहीं रहेंगे। यह तो देह का हमने अभिमान जो कर लिया है, इसलिए साधक के सामने पहली समस्या है कि हम देहाभिमान से रहित हो जाएँ।

देहाभिमान से रहित होने का उपाय है—सम्मान और अपमान का सदुपयोग। अगर मैं उन साधक की जगह होता तो कहता कि अच्छा माता जी, आपने बता दिया। आपका नाम पूछूँगा तो आपका नाम लिया करूँगा, आप मुझको क्षमा करें। और क्षुभित बिल्कुल न होता। मैं तो कहता हूँ कि यह लोगों का भ्रम है कि जो माता, बहन और बेटी कहने से एतराज करें। यह भ्रम है। उस साधक से यह कहना चाहता हूँ कि अगर तुमसे किसी ने नौकर कह दिया तो तुम नौकर थे क्या? किसी करोड़पति को कोई कंगाल कह दे तो वह हँसेगा कि क्रोध करेगा। कोई करोड़पति सम्पत्ति-शाली हो और कोई उससे कह दे कि तुम कंगाल हो तो वह हँसेगा कि यह जानता नहीं है; अबोध है। तो अबोध की बात का प्रभाव अपने पर होना, यह साधक का धर्म तो नहीं है। और इसका कारण क्या है?

कभी हमसे आकर व्यक्तिगत सत्संग करते नहीं। खुद जानते नहीं और सुनते हैं नहीं।

तो केवल काम करने मात्र से कोई मालिक नहीं हो जाता। और काम करने मात्र से कोई नौकर नहीं हो जाता। मालिक सृष्टि का एक है, वह व्यक्ति नहीं है। और भैया जो कुछ भी चाहता है, जरा गंभीरता से सोचना, बुरा मत मानना कोई भाई, जो कुछ भी चाहता है वह नौकर तो है ही। नौकर में और मालिक में फर्क क्या है? यही फर्क है कि जो मालिक होता है, वह की हुई सेवा के बदले में कुछ चाहता नहीं। और नौकर जो है, वह की हुई सेवा के बदले में अपनी मार्केटिंग वैल्यू बताता है कि मुझे यह दोगे तो मैं ऐसा करूँगा। तो जो अचाह नहीं है वही नौकर है। चाहे मैं हूँ, चाहे कोई हो।

जो परमात्मा को सृष्टि का मालिक मानता है, वह देहाभिमानी नहीं है। तो मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आपको जो वस्तु मिली है, जो योग्यता मिली है, जो सामर्थ्य मिली है वह किसी की दी हुई है या आपकी उपार्जित है? दी हुई है, तो जिसकी दी हुई है वह मालिक है कि आप मालिक है? मालिक सृष्टि का एक है, दो नहीं हो सकते क्योंकि सृष्टि एक है।

अगर इस सत्य को आप स्वीकार कर सकते हैं कि इस सृष्टि का प्रकाशक और आधार एक है तो इस प्रकाशक ने तो कभी कहा नहीं कि सृष्टि मेरी है। और आप सोचते हैं, तन मेरा है, मन मेरा है प्राण मेरे हैं, मैं योग्य हूँ, योग्यता मेरी है, सामर्थ्य मेरी है। जो लोग मिली हुई वस्तु को अपनी मान लेते हैं; हम क्या बतावें, बेईमानों में तो पहला नाम है ही उसका, वह चोर भी है। सबसे बड़ा चोर दुनिया में वही है, बेईमान वही है जो मिली हुई वस्तु को अपनी मिल्कियत मान लेता है। मेरे पास इतना रुपया जमा है, मैं चाहूँगा सो देख लूँगा। अरे भैया, रुपए के अधीन हो

कर तुम शान्ति का सुख लेते हो, बल के अधीन हो कर तुम मुक्ति का सुख लेते हो, योग्यता के अधीन होकर तुम भक्ति का सुख लेते हो। यह भ्रम है, यह चोरी है, वह बेईमानी है।

मैं यह जीवन का सत्य आपसे निवेदन कर रहा हूँ मैं किसी व्यक्ति से कुछ नहीं कह रहा हूँ। इसलिए मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता था कि यदि आज आपके सामने देहाभिमान-रहित होने का प्रश्न नहीं है तो भाई कब होगा? कालान्तर में यह नहीं होगा, धीरे-धीरे यह नहीं होगा। अगर देहाभिमान-रहित होने का प्रश्न है, तो जिस वक्त आपको पता चल गया कि देहाभिमान के कारण मुझ को क्षोभ होता है, मुझ को क्रोध आता है, मुझमें कामनाओं का जन्म होता है तो उसी समय आपको सजग होकर सावधानी पूर्वक जीवन का यह पहला प्रश्न होना चाहिए कि जब तक देहाभिमान का नाश नहीं करूँगा तब तक चैन से नहीं रहूँगा। पूरी अभिलाषा देहाभिमान के नाश की होनी चाहिए।

■■■■■■

• *अपने को सब ओर से हटाकर अपने में ही अपने प्रेमपात्र का अनुभव करना अनन्य भक्ति है।*

सेवा ही जीवन का सार सर्वस्व

जिसका नाश नहीं होता उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती। नाश किसका नहीं होता? जिसकी उत्पत्ति नहीं होती। जिसे उत्पत्ति का ज्ञान है उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जिसे उत्पत्ति का बोध है वह अनुत्पन्न हुआ है। वह अविनाशी तत्त्व अनुत्पन्न है। उसी अनुत्पन्न और अविनाशी तत्त्व से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करना अथवा उससे एकता अनुभव करना ही सत्संग है। वैसे देखा जाए तो मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होना भी सत्संग है। अचाह होना भी सत्संग है। अकिंचन होना भी सत्संग है।

यह सत्य है कि व्यक्तिगत कुछ नहीं है, यह सत्य है कि सभी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं, यह सत्य है कि जो सभी का है, जो सदैव है, जो सर्वत्र है, वही सत् है। तो आस्था और धर्म के आधार पर सत् की चर्चा चलती है, जो जाना जाता है वह ज्ञान नहीं कहलाता। जिससे जाना है वही ज्ञान है। इस सब का ज्ञाता कौन है? उत्पत्ति-विनाश का क्रम चल रहा है। सृष्टि की स्थिति नहीं है, केवल उत्पत्ति-विनाश का ही क्रम है। इस बात का बोध जिसके द्वारा होता है, वह बोध रूप सत्य है।

अब हम इस सत्य को स्वीकार करें ज्ञान के आधार पर अथवा आस्था, श्रद्धा, विश्वास के आधार पर—उसका नाम सत्संग है। मन से, वाणी से, कर्म से बुराई-रहित होना अनिवार्य है। क्योंकि हम जानते हैं कि कोई हमारे साथ बुराई न करे। ज्ञान विरोधी कर्म का त्याग अत्यन्त आवश्यक है। यह सत्संग है। इसका फल क्या होगा? हम धर्मात्मा हो जाएँगे; कर्त्तव्य-परायणता आ जाएगी। ऐसे ही ज्ञान-विरोधी विश्वास का त्याग सत्य है। ज्ञान-विरोधी विश्वास का त्याग करते ही प्रभु-विश्वास का उदय होगा। ज्ञान-विरोधी सम्बन्ध का त्याग करते ही वास्तविक सम्बन्ध जिसके साथ है उसकी जानकारी होगी।

अत: हमें क्या नहीं करना चाहिए, इस बात को ठीक-ठीक अनुभव करने से, हम धर्मात्मा हो सकते हैं, ज्ञान-विरोधी सम्बन्ध के त्याग से जीवन-मुक्त हो सकते हैं और ज्ञान-विरोधी विश्वास के त्याग से भक्त हो सकते हैं। तो मानवमात्र धर्मात्मा होने में, जीवन-मुक्त होने में और भगवत् भक्त होने में सर्वदा स्वाधीन है—यह जीवन का सत्य है।

इस दृष्टि से सत्य को स्वीकार करना साधक का स्वधर्म है; परम पुरुषार्थ है। जब हम स्वधर्मनिष्ठ हो जाते हैं, तो जीवन में स्वत: साधना की अभिव्यक्ति होती है अर्थात् साधना और जीवन एक हो जाता है। साधना है क्या? साधना सत्य के संग का परिणाम है। जहाँ आपने ज्ञान-विरोधी कर्म का त्याग कर दिया, आप धर्मात्मा हो गए; ज्ञान-विरोधी विश्वास का त्याग कर दिया, जीवन मुक्त हो गए और ज्ञान-विरोधी सम्बन्ध का त्याग कर दिया, भगवद्भुक्त हो गए। इन तीनों बातों में मानव सर्वदा स्वाधीन है—धर्मात्मा होने में, जीवन-मुक्त होने में और भगवद्भक्त होने में।

इसी सत्य को बताने के लिए यह कहा गया है कि हम जिस बात में स्वाधीन है, उस स्वाधीनता का हम दुरुपयोग न करें अपितु सदुपयोग करें। स्वाधीनता के सदुपयोग से ही भगवत्-विश्वास सजीव हो जाता है। जो स्वाधीन हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है और जो मुक्त हो जाता है, वह भक्त हो जाता है। स्वाधीनता के सदुपयोग से ही मानव धर्मात्मा हो जाता है। तो हमें मिली हुई स्वाधीनता का सर्वदा ही सदुपयोग करना चाहिए।

बुराई क्या है? स्वाधीनता का दुरुपयोग ही वास्तव में बुराई है। आप विचार करके देखो—यदि ऐसा विधान होता कि हम झूठ बोलने की सोचते तो वाणी अवरूद्ध हो जाती। ऐसा होने पर क्या हमको यह भास होता कि हम सत्य बोलते हैं? क्या राय है? तो प्रभु ने यह विधान नहीं बनाया। इसलिए प्रभु ने यह विधान नहीं बनाया कि मानव मिली हुई

स्वाधीनता के सदुपयोग से यह स्वयं स्वीकार करें कि मैं धर्मात्मा हूँ, मैं जीवनमुक्त हूँ, मैं भगवद्भक्त हूँ। तो धर्मात्मा होने की उपाधि, जीवनमुक्त होने की उपाधि, भगवद्भक्त होने की उपाधि 'यह' के अन्तर्गत नहीं है, यह 'स्व' के अन्तर्गत है।

यह जो ज्ञान का प्रकाश मिला है, आस्था का तत्त्व मिला है और बल का तत्त्व मिला है, यह साधन-सामग्री है और मानव साधक है। तो साधन-सामग्री आपको मिली हुई है, उसके सदुपयोग की स्वाधीनता आपको मिली हुई है। अब आप सोचिए कि फिर भी हम यदि साधन-निष्ठ नहीं होते तो इसमें किसी परिस्थिति विशेष का हाथ नहीं है, यह हमारा ही प्रमाद है। साधन-सामग्री भी हमें प्राप्त है, उसके सदुपयोग की स्वाधीनता भी हमको प्राप्त है फिर भी हम यदि उस साधन-सामग्री का सदुपयोग नहीं करते तो यह हमारी ही भूल है।

हम अपनी भूल से ही पराधीनता में, अभाव में, अशान्ति में, नीरसता में आबद्ध होते हैं। हमें कोई और पराधीन नहीं बनाता, और कोई अभाव में आबद्ध नहीं करता, अशान्ति दूसरे लोगों की दी हुई नहीं हैं हमने स्वयं ही अपने जीवन में इन विकारों को उत्पन्न कर लिया है। यदि हम जीवन के इस सत्य को स्वीकार करें तो जो विकार हमने स्वयं उत्पन्न किए हैं, वे सब नाश हो सकते हैं। क्या इस सत्य को स्वीकार करने को हम राजी है? यदि आप राजी हैं तो आपकी साधक संज्ञा हो गई।

जो सत्य को स्वीकार करता है, वही साधक कहलाता है; वही मानव कहलाता है। जिसमें सत्य को स्वीकार करने की स्वाधीनता ही नहीं है; उस सत्य का बोध ही नहीं है उसकी मानव संज्ञा ही नहीं है, वह प्राणी है। वह भोगयोनि है। वह सुख का भोग करेगा हर्षपूर्वक और उसे दुःख भोगना पड़ेगा, विवश होकर। हम हर्षपूर्वक सुख का भोग करें और विवश हो कर हमें दुःख भोगना पड़े यह साधक संज्ञा नहीं है। साधक संज्ञा तभी से आरम्भ होती है, जब से हम जीवन के सत्य को स्वीकार करते हैं।

अब आप विचार करके देखें कि सुख का भोग तो अच्छा लगता है, लेकिन उसका परिणाम अच्छा होता है क्या ? जिसका परिणाम रुचिकर नहीं होता उससे अरुचि हो जाना, उसको नापसन्द करना क्या स्वाभाविक बात नहीं है ? हम परिणाम पर दृष्टि न रखें और सुखद अनुभूति को जीवन मान लें क्या यह साधक का लक्षण है। क्या कोई भी सुखद अनुभूति ऐसी होती है, जिसका आरम्भ और अन्त दुःखमय न हो। आरम्भ भी जिसका दुःख है और अन्त भी जिसका दुःख है केवल कुछ काल के लिए आपको सुखद अनुभूति होती है तो सुख का भोग दुःख है या सुख ? दुःख ही है। भोग नाश हो जाएगा, भोग करने की शक्ति का ह्रास हो जाएगा, यदि इस सत्य को स्वीकार करें तो भोगों को भोगने का सुख, सुख है क्या ?

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि प्रत्येक साधक को, प्रत्येक भाई-बहन को अपने जाने हुए सत्य का ठीक-ठीक अध्ययन करना चाहिए, मनन करना चाहिए और स्वीकार करना चाहिए। आप विचार करके देखिए, आपको भूख कब अच्छी मालूम होती है जब हम यह विश्वास कर लेते हैं कि हम भूखे हैं। तो भूख का लगना सुखद मालूम होता है कि नहीं ? भोजन करने के साथ-साथ भोजन करने की सामर्थ्य का ह्रास हो जाएगा। भोग-सामग्री का विनाश हो जाएगा। अब इस सत्य को सामने रखें तो क्या लगेगा ? सुख का जो प्रलोभन है वह रह जाएगा।

जब जीवन में से सुख का प्रलोभन चला जाता है या आप स्वयं छोड़ देते हैं तो दुःख का भय भी चला जाता है। क्योंकि सुख के भोगी को ही तो दुःख भोगना पड़ता है। यह जो दुःख है यह हमारी मर्जी से आता है कि अपने आप आता है। अपने आप आने वाले दुःख के प्रभाव को अपनाना चाहिए या नहीं ? हम सुख के बाद दुःख का भोग करने लगते हैं। हाय ! हम बहुत दुःखी हैं, हाय ! हम बहुत दुःखी हैं। इस प्रकार हम

दु:ख का भोग करने लगते हैं उसके प्रभाव को नहीं अपनाते। अगर हम दु:ख के प्रभाव को ठीक-ठीक अपनाएँ तो उससे सुख का नाश नहीं होगा, उसका प्रलोभन नाश होगा।

सुख के प्रलोभन का नाश होने पर सुख में आसक्ति रह सकती है क्या? अच्छा और दु:ख के प्रभाव को अपनाने पर दु:ख का भय रहता है क्या? तो दु:ख का भय न रहे, सुख का प्रलोभन न रहे, सुख आए, चला जाए, दु:ख आए अपना प्रभाव दे जाए। अब जीवन में इस प्रकार देखा जाए तो दु:ख साधन-सामग्री है या कुछ और है? अगर दु:ख को हम साधन-सामग्री स्वीकार करें तो हम सुख के भोगी न बन कर सेवा करने वाले बन जाएँ।

अरे भाई, आज हमारे पास धन है इसको अगर हम अपनी खुराक बनाएँगे, अपने लिए मानेंगे, तो इसके नाश होने पर हमें निर्धनता की पीड़ा सहनी पड़ेगी। यह बल हमारा अपने लिए नहीं है, यह तो निर्बलों की सेवा के लिए है। तो जिसके जीवन में सेवा का भाव उदय हो जाता है, उसे शारीरिक प्रवृत्ति सेवा ही मालूम होती है। उसे रोटी खिलाना मालूम होता है, खाना नहीं मालूम होता। उसे पानी पिलाना मालूम होता है, पीना नहीं मालूम होता। इसमें फर्क है या नहीं? तो सेवा एक ऐसा विलक्षण भाव है कि इससे हरेक प्रवृत्ति सेवा हो जाती है।

सेवा का अन्त त्याग में होता है और त्याग की पूर्णता बोध और प्रेम में होती है। इसलिए सुख की घड़ियाँ सेवा करने के लिए हैं और दु:ख की घड़ियाँ दु:ख के प्रभाव से सुख के प्रलोभन को नाश करने के लिए हैं। सुख की नाशक नहीं हैं सुख के प्रलोभन की नाशक हैं। सुख का प्रलोभन कब रहता है? जब हम सुख भोगते हैं। सेवा करने वाले में सुख का प्रलोभन नहीं रहता है। और सुख का प्रलोभन नाश होने के बाद दु:ख का स्वत: नाश हो जाता है। जिसको जीने की आशा नहीं रहती,

उसको मरने का भय भी नहीं रहता। जो लाभ का सुख नहीं भोगता, वह हानि के भय से भयभीत नहीं होता।

हमसे गलती क्या होती है? हम सुख-दुःख को साधन-सामग्री नहीं मानते, जीवन मान लेते हैं। मानवीय प्रकृति के अनुसार, प्राकृतिक विधान के अनुसार, सुख-दुःख साधन-सामग्री हैं। अगर यह सत्य हमें जँच जाए, रुच जाए, पसन्द आ जाए, तो जो जीवन सुख के सदुपयोग से मिल सकता है, वही जीवन दुःख के सदुपयोग से भी मिल सकता है। तो हमें सुख-दुःख में समता प्राप्त हो सकती है कि नहीं? सुख-दुःख के द्वारा हम सुख-दुःख से अतीत, अविनाशी, स्वाधीन रसरूप चिन्मय जीवन को प्राप्त कर सकते हैं कि नहीं?

यह आस्था की दृढ़ता कि हम सुख-दुःख से अतीत, अविनाशी, स्वाधीन, चिन्मय जीवन को प्राप्त कर सकते हैं, बड़े काम की चीज है। यह आस्था बड़े काम की चीज है। अगर हमें आज यह निर्भरता प्राप्त हो जाए, कि हम यह स्वीकार करें कि यह जीवन का सत्य है कि सुख-दुःख के सदुपयोग से अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय जीवन की प्राप्ति होती है, उसकी माँग जीवन में भर लें। अविनाशी जीवन की माँग जीवन में नहीं है क्या? (**श्रोता का उत्तर**—है) स्वाधीन जीवन की माँग है। रसरूप जीवन की माँग है। जिसकी माँग होती है, उसकी स्वतन्त्र सत्ता होती है। सुख की माँग नहीं है; सुख की तो रुचि है।

मानव जीवन में सेवा का व्रत एक महत्त्वपूर्ण साधन है क्योंकि सेवा प्रेम का क्रियात्मक रूप है और त्याग प्रेम का विवेकात्मक रूप है। प्रेम तत्त्व में ही जीवन की पूर्णता है। जब तक प्रेम तत्त्व से अभिन्नता नहीं होती तब तक जीवन पूर्ण नहीं होता। प्रेम तत्त्व की प्राप्ति के लिए सेवा और त्याग साधन हैं। सेवा के बिना और त्याग के बिना प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। तो दुःख का प्रभाव हमें त्याग की प्रेरणा देता है और सुख हमें

सेवा की प्रेरणा देता है। इस हिसाब से सेवा और त्याग साधना हुई और प्रेम तत्त्व की प्राप्ति साध्य हुआ।

सेवा कोई नहीं कर सकता, ऐसी बात है ही नहीं। किसी का बुरा न चाहो यह नहीं कर सकता? बुराई-रहित वह नहीं हो सकता? (**श्रोता का उत्तर** "हो सकता है।") तो मानव मात्र सेवा कर सकता है कि नहीं? सेवा का आरम्भ जो होता है वह बुराई-रहित होने से, मध्य में सुखद घड़ियों में यथाशक्ति भलाई से और अन्त में अचाह होने से। अगर भलाई का फल चाहेगा तो सेवा नहीं हो सकती; बुराई-रहित नहीं होगा तो सेवा नहीं हो सकती। तो भलाई का फल मत चाहो और बुराई रहित हो जाओ यही तो सेवा का स्वरूप है। सभी के प्रति सद्भाव यह सेवा है, यथाशक्ति सहयोग यह सेवा है। इस दृष्टि से जो व्यक्ति हृदय में सद्भाव रखता है, वह तो इतनी बड़ी सेवा करता है कि हम आपको क्या बतावें। अगर किसी पंगु को देख कर हृदय में यह भाव उदय होता है कि इस बेचारे से चला नहीं जाता। लाओ इसे वहाँ पहुँचा दें, तो आपमें उदारता की जागृति होती है कि नहीं? तो सेवा तो हर आदमी कर सकता है।

लेकिन दुःख की बात तो यह है कि कुछ लोग सोचते हैं कि पैसा खर्च कर दो तो सेवा हो गई। कुछ लोग समझते हैं कि शरीर से कार्य कर दो तो सेवा हो गई। कर्म में और सेवा में भेद है। कर्म अपने सुख की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है और सेवा पर-हित कि दृष्टि से की जाती है। तो जो सभी का हित चाहता है वह सेवा कर सकता है। जो अपना सुख चाहता है कि घर छोड़ दो, वन में चले जाओ, भिक्षा माँग कर खाओ और भिक्षा सुविधा से मिल गई तो बड़ा सुख मालूम होता है नहीं मिली तो दुःख मालूम होता है। इसने सेवा की क्या? इससे तो शरीर की सेवा भी नहीं बनी, मन की सेवा भी नहीं बनी, प्राणों की सेवा भी नहीं बनी।

यह जो आपका शरीर है यह भी तो आपको मिला है। इसकी सेवा करो, अपनी सेवा करो। अगर आप अकिंचन और अचाह नहीं होते तो क्या अपनी सेवा कर सकते हैं? अगर आप उदार नहीं बनते तो क्या आप विश्व की सेवा कर सकते हैं? अगर आप प्रभु को अपना नहीं मानते, प्रेमी नहीं बनते तो प्रभु की सेवा कर सकते हैं क्या? प्रेम तत्त्व की प्राप्ति का अर्थ क्या है? प्रभु की सेवा, और त्याग का अर्थ क्या है? अपनी सेवा और उदारता का अर्थ क्या है—जगत् की सेवा। तो आप अपनी सेवा कर सकते हैं, जगत की सेवा कर सकते हैं और प्रभु की सेवा कर सकते हैं। सेवा ही तो मानव-जीवन का सार सर्वस्व है। इस सम्बन्ध में हमारी दृष्टि नहीं जाती। हम इस तरह सोचते ही नहीं। तो जिस प्रभु ने हमें यह स्वाधीनता दी कि हम जगत् की सेवा कर सकते हैं, अपनी सेवा कर सकते हैं और प्रभु की सेवा कर सकते हैं, हम उस प्रभु की महिमा गायें।

* * * * *

* *स्वधर्म पालन करने में आई हुई कठिनाइयों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना परम तप है।*

सत्संग मानव का स्वधर्म

मैं उन लोगों का बड़ा आभार मानता हूँ जो यहाँ सुनने आए और जिन्होंने आयोजन किया। करनाल और दिल्ली के लोगों ने मिल करके आयोजन किया। सत्संग को मैंने स्वधर्म बताया। सत्संग स्वधर्म है, पुरुषार्थ है। सत्संग से ही असाधन का नाश होता है, साधन की अभिव्यक्ति होती है, साधन और जीवन में एकता होती है। मनुष्य को सत्संग करना चाहिए। सत्संग की परिभाषा क्या है? बल का दुरुपयोग नहीं करूँगा यह सत्संग है, ज्ञान का अनादर नहीं करूँगा यह सत्संग है, विश्वास में विकल्प नहीं करूँगा यह सत्संग है। यह मनुष्य का व्रत होना चाहिए।

किसी भी व्रत को पूरा करने के लिए तीन चीजों की जरूरत होती है—तप की, प्रायश्चित् की और प्रार्थना की। तो तप, प्रायश्चित् और प्रार्थना पूर्वक इस व्रत को पूरा करो। बल का दुरुपयोग नहीं करोगे तो कर्त्तव्य परायणता आ जाएगी अपने आप। ज्ञान का अनादर नहीं करोगे तो असंगता आ जाएगी और श्रद्धा-विश्वास में विकल्प नहीं करोगे तो आत्मीयता आ जाएगी। कर्त्तव्य-परायणता से जीवन जगत् के लिए उपयोगी होगा। असंगता से जीवन अपने लिए उपयोगी होगा तथा आत्मीयता से परम प्रेम की प्राप्ति होगी और जीवन प्रभु के लिए उपयोगी होगा। इसी लिए मैंने जो जोर दिया है वह इस बात पर कि हमें सत्संग करना चाहिए।

सत्संग का अर्थ है कि जो नहीं करने वाली बात है वह नहीं करेंगे। जैसे— अगर आप से भलाई नहीं होती तो कोई बात नहीं; किसी के साथ बुराई मत करो। तो बुराई-रहित होने से हम भले हो जाएँगे और जब हम भले हो जाएँगे तो भलाई स्वतः होने लगेगी क्योंकि कर्त्ता में ही से कर्म निकलता है। होने वाली भलाई का अभिमान और फल छोड़ दें तब आप स्वाधीन हो जायेंगे। स्वाधीन होने से दो चीजें अपने आप आ जाती हैं जीवन में—संसार के प्रति उदारता और परमात्मा के प्रति प्रेम स्वतः उदय होता है। यह सब सत्संग का ही फल है।

और यह भी कहा गया था कि जितनी समस्याएँ आती हैं जीवन में उन सारी समस्याओं का हल सत्संग से ही हो सकता है। और सत्संग बताया आपका अपना स्वधर्म, कोई अभ्यास नहीं बताया। तीन तत्त्व आपमें हैं। ज्ञान का तत्त्व है उसका तो अनादर न करें, बल का तत्त्व है उसका दुरुपयोग न करें, श्रद्धा का तत्त्व है उसमें विकल्प न करें। क्या चीज आपके जीवन में ज्ञान से सिद्ध है, क्या चीज आपके बल से सिद्ध है, क्या चीज आपकी आस्था से सिद्ध है। कर्त्तव्य-परायणता आपके बल के अधीन है, असंगता ज्ञान के अधीन है और आत्मीयता आस्था के अधीन है।

कर्त्तव्य-परायणता कहो चाहे धर्म-विज्ञान कहो चाहे भौतिकवाद कहो, एक ही बात है। असंगता कहो चाहे अध्यात्मवाद कहो एक ही बात है। आत्मीयता कहो चाहे ईश्वरवाद कहो एक ही बात है। भौतिकवादी होने से कर्त्तव्य-परायणता से सिद्धि होगी, अध्यात्मवादी होने से असंगता से सिद्धि होगी और ईश्वरवादी होने से आत्मीयता से सिद्धि होगी।

तो जो मैं कहता हूँ उसका अर्थ आप वही लेते हैं जो मैं कहता हूँ या मनमाना अर्थ लेते हैं? इसलिए जो मैंने कहा हैं उससे क्या समझा है आपने सो बताओ। बल का दुरुपयोग न करना आपको ठीक मालूम पड़ता है कि नहीं? और ज्ञान का अनादर न करना? और श्रद्धा में विकल्प न करना। **श्रोता**—ज्ञान का अनादर तो नहीं करना चाहिए लेकिन मोह और ममता। **स्वामी जी**—मोह और ममता तो उसका फल है। ज्ञान के अनादर का फल है मोह और ममता। जब ज्ञान का आदर करना शुरु करेंगे तो निर्मोहता आ जाएगी, निर्ममता आ जाएगी, निष्कामता आ जायेगी। निर्ममता आने पर भी आप परिवार का, समाज का कार्य कर सकेंगे। निष्काम होने पर भी आप काम कर सकेंगे। मोह और ममता पहले थोड़े ही होती है, वह तो ज्ञान के अनादर के बाद होती है। भूल का परिणाम है मोह और ममता। मोह-ममता स्वाभाविक थोड़े ही है। परिवार की सेवा करो, ममता

का क्या अर्थ। परिवार के अधिकार की रक्षा करो और परिवार के ऊपर से अपना अधिकार हटा लो। यही त्याग हो गया। अपना अधिकार हटा लोगे तो ज्ञान मार्ग हो जाएगा और परिवार का अधिकार मान लोगे तो भौतिक वाद हो जाएगा। दुनियादार होकर रहना चाहो तो दूसरों के अधिकार की रक्षा करो और दुनिया के ऊपर उठना चाहो तो अपने अधिकार का त्याग करो। परिवार को बुरा मत समझो, परिवार की निन्दा मत करो। हर आदमी अपनी जगह पर पूरा और श्रेष्ठ है। क्योंकि भौतिकवाद की चरम सीमा; पराकाष्ठा हो जाएगी तो अध्यात्मवाद आ ही जाएगा। और अध्यात्मवाद की पूर्णता हो जाएगी तो ईश्वरवाद आ ही जाएगा। आरम्भ-काल में भेद है अन्त में तीनों एक ही जीवन की चीज है न?

भौतिकवाद, अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद एक ही जीवन के तीन पहलू हैं। चाहे आप भौतिकवाद से आरम्भ करो, चाहे अध्यात्मवाद से आरम्भ करो चाहे ईश्वरवाद से करो। कोई आसान नहीं जिसे जो पसन्द आ जाए। पहले तो तीनों ही करने पड़ेगें। अगर रोटी खाना है तो भौतिकवाद मानना पड़ेगा। स्वाधीन होना है तो अध्यात्मवाद मानना ही पड़ेगा, प्रेमी होना है तो ईश्वरवाद या आस्तिक वाद मानना ही पड़ेगा। चाहे प्रेमी होकर स्वाधीन होकर कर्त्तव्य का पालन करो, चाहे कर्त्तव्यनिष्ठ होकर प्रेम प्राप्त करो चाहे स्वाधीन होकर कर्त्तव्यनिष्ठ हो कर प्रेम को प्राप्त करो। तीन में से आरम्भ कहीं से करो।

•••••

• *उन सभी संकल्पों का अन्त कर दो, जिनको जन समाज के सामने निर्भयता पूर्वक प्रकाशित नहीं कर सकते।*

स्वाधीनता, उदारता और प्रेम

कर्त्तव्यपरायण हो जाने पर आपका चित्त शुद्ध हो जाएगा और चित्त शुद्ध होने पर आपको शान्ति मिल जाएगी। शान्ति में से अगर आप परमात्मा को मानने वाले हैं, तो परमात्मा की प्रियता उदय होगी; परमात्मा का प्यार पैदा होगा। अगर आप अध्यात्मवादी हैं तो आत्म-संतुष्टि प्राप्त होगी। अगर आप भौतिक वादी हैं तो आवश्यक सामर्थ्य की प्राप्ति होगी इस शान्ति में से। शान्ति का मतलब कोई अभ्यास नहीं है। शान्ति एक ऐसी चीज है जिसमें कोई श्रम नहीं होता। परिश्रम नहीं है शान्ति में। इसका जो बाह्य रूप बताया था मैंने वह यह बताया था कि जब आपने बुराई छोड़ दी, तो आपसे भलाई होगी। जैसे, आपने कहा मैं झूठ नहीं बोलूँगा तो सत्य बोलोगे। सत्य बोलेगे तो सुनने वालों को लाभ होगा, उनके अधिकार की रक्षा होगी। परन्तु इसका अभिमान मत करना कि मैं सत्य बोल रहा हूँ। ऐसे ही अगर किसी को हानि नहीं पहुँचाओगे तो किसी की मदद ही करोगे। उसका फल मत चाहना, उसका अभिमान मत करना कि मैं मदद करता हूँ।

भलाई का फल मत चाहो और बुराई करो मत। जब बुराई नहीं करोगे तो भलाई अपने आप होगी। जो अपने आप होती है उसका अभिमान होता नहीं है, कायदे से। परन्तु उसका फल नहीं माँगना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि बुराई-रहित हो गये और अचाह हो गये। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा कुछ नहीं है क्योंकि आप अगर दी हुई चीज को अपना मानेंगे तो अचाह हो ही नहीं सकते। जैसे, मैंने कोई व्याख्यान दिया और मैं यह मान लूँ कि जो व्याख्यान मैंने दिया वह मेरी चीज है तो अचाह नहीं हो सकता। अचाह होने के लिए जिस वस्तु के द्वारा भलाई की जाय उस वस्तु को अपनी न मानी जाय। इतनी-सी बात जरूरी है। क्योंकि सचमुच वस्तु तो अपनी हैं ही नहीं।

आप विचार करके देखें कि कोई वस्तु भी व्यक्तिगत नहीं है। अगर हम बोल रहे हैं और आकाश न हो तो शब्द थोड़े ही बनेगा। आपकी आँखें मौजूद हैं लेकिन बाहर की रोशनी के बिना आँखें देख सकती हैं क्या? क्या राय है? बोलो डॉक्टर साहब ! अगर बाहर की रोशनी न हो तो आँखें देख सकती हैं? अगर आकाश न हो तो कान सुन सकते हैं? तो समष्टि शक्तियों के बिना संसार की शक्तियों के बिना तुम्हारे शरीर की शक्ति काम कर सकती है? जी? नहीं कर सकती। तो इसका मतलब क्या हुआ? अच्छा समष्टि शक्ति किसी व्यक्ति की बनाई हुई है क्या? तो इसका मतलब यह हुआ न कि समष्टि शक्ति का ही शरीर हुआ। सारी शक्तियाँ, जो हमारे पास हैं, वे समष्टि शक्तियों का ही एक हिस्सा हुआ। और समष्टि शक्ति किसी व्यक्ति की है नहीं।

आपने शक्ति का जो सदुपयोग किया बुराई छोड़ देने से, उसका क्या आप अभिमान करेंगे? भलाई करने वाली शक्ति अगर हमारी होती तो हम कहते कि इसका फल हमको चाहिये, इसका अभिमान हमको करना चाहिए। मतलब कहने का यह था कि मनुष्य का व्यक्तिगत (पर्सनल) कुछ है नहीं। इसलिए भलाई का अभिमान नहीं करना चाहिए। लेकिन हम अचाह हो सकते हैं। बुराई-रहित हो सकते हैं। बुराई-रहित होने से भलाई हो सकती है और हम अचाह हो सकते हैं।

अचाह होने से हमें शान्ति मिलती है। देखिए, शान्ति का एक सीधा उपाय बतायें आपको, शान्ति मिलती है कुछ न चाहने से। अतः कुछ न चाहो। कुछ न चाहने की शक्ति आती है, मेरा कुछ नहीं है यह बात जान लेने से। मेरा पर्सनल कुछ नहीं है, यह बात जान लेने से यह शक्ति आती है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। यानी मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए और बुराई आपने पहले छोड़ ही दी।

तो बुराई-रहित हो गए, इससे तो आप संसार के काम आ गए। और मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, इससे आप स्वाधीन हो गए; शान्त हो गये। स्वाधीन होने से आपको वह रस मिलेगा, जिसकी माँग है। इस रस के भी तीन चार स्रोत हैं। स्वाधीन होने से मनुष्य पहले उदार होता है और फिर प्रेमी होता है। यह तो स्वाधीनता का फल है। उदारता में भी रस है, स्वाधीनता में भी रस है और प्रेम में भी रस है। तो उदार होता है संसार के लिए और प्रेमी होता है परमात्मा के लिए। कौन? जो स्वाधीन होता है वह। स्वाधीन कौन हुआ? मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए जिसने यह अनुभव किया वह हो गया स्वाधीन। और जब वह स्वाधीन हो गया तो उदारता और प्रेम की अभिव्यक्ति हो गई।

उदारता का अर्थ है कि वह सभी को अपना करके देखने लगता है। सुखी को देख कर वह प्रसन्न होने लगता है, दुःखी को देखकर करुणित होने लगता है। और उसी में जब प्रेम का उदय होता है तब संसार छिप जाता है और परमात्मा प्रकट हो जाता है। जब तक मानव स्वाधीन नहीं होता, तब तक संसार के लिए उदार नहीं होता और परमात्मा के लिए प्रेमी नहीं होता। ऐसा नियम है। और जब तक बुराई-रहित नहीं होता तब तक मन शुद्ध नहीं होता। जब तक मन शुद्ध नहीं होता तब तक अचाह नहीं होता, निर्मम नहीं होता। तो एक से एक लगा हुआ है।

देवकी जी ने बड़ी सुन्दर बात कही आपसे कि प्रेम हृदय में उदित होता है। हृदय उसे कहते हैं जिसमें प्रेम का उदय होता है। जैसे जिससे हम देखते हैं उसे आँख कहते हैं ऐसे ही जिसमें प्रेम उदय होता है, उसे हृदय कहते हैं। हृदय हमारा तब पवित्र होता है जब हम अचाह हो जाते हैं, जब हम निर्मम होते हैं। देखिए, वस्तु हमारे हृदय को दूषित नहीं करती लेकिन वस्तु की ममता हृदय को दूषित करती है, वस्तु की कामना हृदय को दूषित करती है। वस्तु की ममता से तो जड़ता आ जाती है, और वस्तु

की कामना से अशान्ति आ जाती है। अगर वस्तु की ममता न रहे, और वस्तु की कामना न रहे, मेरा कुछ नहीं है; ममता गई; मुझे कुछ नहीं चाहिए; कामना गई, तो मेरा कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिए, इन दो बातों से हृदय में न तो जड़ता रहती है और न अशान्ति रहती है। देखिए, यह बिल्कुल जीवन का सत्य है कि जहाँ जड़ता नहीं रहती, अशान्ति नहीं रहती वहाँ परमात्मा ही परमात्मा का बोध रहता है। परमात्मा चेतन है न, परमात्मा जड़ तो है नहीं।

ममता जाने से जड़ता गई, कामना जाने से अशान्ति गई। जब हृदय में से जड़ता निकल गई, अशान्ति निकल गई तब चेतना और शान्ति रह गई। चेतना जो है यह अमरत्व का प्रतीक है और शान्ति जो है यह शक्ति का प्रतीक है। अमरत्व, अमर जीवन की प्राप्ति, अविनाशी जीवन की प्राप्ति शान्ति और चेतना के बिना नहीं होगी।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए तो तीसरी चीज क्या आएगी? अब मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है। मेरा कुछ नहीं है यह पहली बात, मुझे कुछ नहीं चाहिए यह दूसरी बात, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है यह तीसरी बात। निर्मम, अचाह और अप्रयत्न। आप निर्मम समझ गए न—मेरा कुछ नहीं है जिसके पास उसे निर्मम कहते हैं। जिसके पास अपना करके कुछ नहीं है उसे अकिंचन कहते हैं। जिसे कुछ नहीं चाहिए उसे अचाह कहते हैं और जिसे अपने लिए कुछ न करना हो उसे अप्रयत्न कहते हैं।

अहंकृति का नाश, चाह का नाश और ममता का नाश—इन तीन बातों से, देवकी जी ने बताया आपका हृदय शुद्ध होगा, कोमल होगा, मधुर होगा और चेतना आ जाएगी। जड़ता मिट जाएगी, अशान्ति मिट जाएगी। अशान्ति गई तो दुःख चला गया, जड़ता गई तो संसार चला गया। इस प्रकार दुःख और संसार की निवृत्ति हो जाएगी। जड़ता के जाने से संसार

की निवृत्ति होती है और चेतना के आने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। जड़ता चली गई और अशान्ति चली गई। अशान्ति क्यों चली गई? मुझे कुछ नहीं चाहिए यों। जड़ता क्यों चली गई क्योंकि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं करना है। तीन बातें आई न? मुझे कुछ नहीं करना है, मुझे कुछ नहीं चाहिए और मेरा कुछ नहीं है। "मैं" के द्वारा तीन बातों को आपने स्वीकार किया—मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए और मुझे कुछ नहीं करना है।

अब यह स्वीकार हो कैसे? कैसे सामर्थ्य आए तीन बातों की? जब आप बुराई रहित होकर भले हो गए और भलाई होने लगी। जब तक बुराई करते रहे तब तक तो भले ही नहीं हो पाते। जब बुराई छोड़ दी तब भले हो गए और जब भलाई का अभिमान छोड़ दिया तब कहने लगे—मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे कुछ नहीं करना है। जिसे कुछ नहीं चाहिए उसे क्या करना है? जिसके पास कुछ नहीं है, उसे काहे का भय है? जिसके पास कुछ न हो, उसे सारी दुनिया कोशिश करे नुकसान पहुँचाने की क्या नुकसान पहुँचा सकती हैं? जिसे कुछ नहीं चाहिए उसे कोई अशान्त कर सकता है? जिसे कुछ न करना हो उसमें कहीं भी देह का तादात्म्य रह सकता है? मुझे कुछ नहीं चाहिए, इससे संसार का सम्बन्ध टूट जाता है। तो संसार का सम्बन्ध और देह का सम्बन्ध कैसे छूटा? मेरा कुछ नहीं है, मुझ कुछ नहीं चाहिए, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है—इससे सम्बन्ध टूट गया।

जब बुराई-रहित हो गए तो भले हो गए और संसार की वस्तु से संसार की सेवा कर दी जैसे गंगाजल से गंगा की पूजा कर देते हैं। तो संसार से ही संसार की सेवा हुई। बुराई छोड़ने के बाद आप में यह ताकत आ गई कि संसार के द्वारा ही संसार की सेवा होने लगी। यदि संसार के द्वारा संसार की सेवा होने लगी, तो इसमें अपना तो कोई अभिमान नहीं

रहा न? संसार की सेवा हो गई, हम अचाह हो गये, निर्मम हो गए और अहंकृति-रहित हो गए। अहंकृति-रहित होने से शरीर का तादात्म्य टूट गया, अचाह होने से संसार छूट गया, निर्मम होने से संसार का सम्बन्ध टूट गया। तो चेतना, शान्ति और स्वाधीनता, तीन चीजें आ गई।

उसी स्वाधीनता में से उदारता और प्रेम का उदय हो गया। जगत् की ओर दृष्टि गई तो उदारता आ गई; जगत् से दृष्टि हटी तो प्रेम आ गया। प्रेम और उदारता ये स्वाधीनता के ही विशेषण हैं। जहाँ स्वाधीनता है वहीं उदारता और प्रेम है। इसीलिए जब आप स्वाधीन हो गए तब उदार हो गए और प्रेमी हो गए। अब परमात्मा से पूछो, किसी से पूछो कि परमात्मा कैसा है? तो कोई नहीं कहेगा कि परमात्मा परम उदार नहीं है, परमात्मा परम स्वतन्त्र नहीं है और परमात्मा परम प्रेम से भरपूर नहीं है। तो परमात्मा का जो स्वरूप था वहीं तुम्हारे में व्यक्त हो गया।

उदारता प्रकट हो गई, स्वाधीनता प्रकट हो गई, प्रेम प्रकट हो गया। उदारता से जीवन जगत् के लिए उपयोगी हो गया, स्वाधीनता से अपने लिए उपयोगी हो गया और प्रेम से प्रभु के लिए उपयोगी हो गया। तो उदारता, स्वाधीनता और प्रेम में जीवन है। और कहीं जीवन नहीं है। उदारता कहाँ है भाई? उदार कौन हो सकेगा, जो स्वाधीन होगा। पराधीन कैसे उदार हो जाएगा? और स्वाधीन कौन होगा? जिसे कुछ नहीं चाहिए, जिसके पास कुछ नहीं है वह होगा स्वाधीन।

अब देखिए न; जिस कमरे में हम ठहरे हैं वह हमारा है, यह कहने की बात है न, लेकिन वास्तव में हम जानते हैं कि यह कमरा हमारा नहीं है। तो ऐसे ही यह शरीर हमारा नहीं है। हमारा कुछ नहीं है, मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए यह जान लेने पर ही हम स्वाधीन हो सकते हैं। और देखिए, स्वाधीन होने से ही अविनाशी जीवन की प्राप्ति होती है। स्वाधीन होने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। स्वाधीन होने से ही उदारता और प्रेम की अभिव्यक्ति होती है।

स्वाधीन होने में हम पराधीन हैं क्या? कोई पराधीन नहीं है। लेकिन यह बात हम सोचते हैं क्या? हम यह बात पसन्द नहीं करते कि स्वाधीन होने में हम स्वाधीन है और किसी बात में हम स्वाधीन नहीं हैं। पराधीनता को बनाए रखने में हम स्वाधीन नही हैं। मैं हमेशा बोलता रहूँ, इस बात में मैं स्वाधीन हूँ क्या? आप हमेशा सुनते रहें, इस बात में आप स्वाधीन हैं क्या? बोलने और सुनने में हम स्वाधीन नहीं हैं। जब तक हमें बोलना बाकी है, सुनना बाकी है तब तक तो हमें बोलना-सुनना चाहिए। जब तक बुराई नहीं छोड़ते तब तक कुछ करना बाकी रहता है। बुराई छोड़ने से करना पूरा हो जाता है। जब करना पूरा हो जाता है तब हम अचाह हो जाते हैं, निर्मम हो जाते हैं, अहंकृति-रहित हो जाते हैं, अर्थात् स्वाधीन हो जाते हैं।

और जब स्वाधीन हो जाते हैं तब स्वाधीनता जिसका स्वरूप है, उदारता और प्रेम जिसका स्वभाव है उस परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। जो स्वाधीन है उसी को परमात्मा कहा। संसार स्वाधीन हो सकता है क्या? नहीं हो सकता। क्योंकि परमात्मा स्वाधीन है इसीलिए परमात्मा परम उदार है और परम प्रेम का भण्डार है। तो अगर हमें परमात्मा को पाना है तो बिना स्वाधीन हुए परमात्मा मिल सकता है क्या?

स्वाधीन कोई धीरे-धीरे होगा क्या? किसी के द्वारा होगा क्या? किसी के द्वारा हो ही नहीं सकता। अच्छा, अचाह होने से स्वाधीन हो जाएगा या नहीं? निर्मम होने से हो जाएगा या नहीं? अहंकृति-रहित होने से हो जाएगा कि नहीं? मेरा कुछ नहीं है, यह बात जान लेने से, मुझे कुछ नहीं चाहिए, यह बात मान लेने से, प्रभु अपने में हैं, अपने हैं, अभी हैं—यह मान लेने से आप स्वाधीन नहीं हो जाएँगे क्या? स्वाधीन होने से ही जीवन की पूर्णता होगी। और किसी प्रकार जीवन की पूर्णता हो नहीं सकती।

अब आप विचार करके देखिए। जितने देर तक आप यह अनुभव करेंगे कि मेरा कुछ नहीं है उतनी देर आपको कोई भय पैदा होगा? कोई भय बताओ। अच्छा जब तक आप यह अनुभव करेंगे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, तो कोई अशान्ति बताओ। मुझे कुछ नहीं करना है जब तक यह बात है, तब तक पराधीनता रहती है क्या? मेरा कुछ नहीं चाहिए, तब तक अशान्ति रहती है क्या? मेरा कुछ नहीं है, तब तक कोई भय रहता है क्या? तो भय, अशान्ति और पराधीनता मिट सकती हैं या नहीं? मिट सकती है। तो इसके लिए उपाय क्या? मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, प्रभु अपने हैं, अपने में हैं और अभी हैं।

अब विचार करके देखो जो अपने में है उसकी प्राप्ति के लिए कोई परिश्रम चाहिए? कोई परिश्रम नहीं चाहिए। अहंकृति का नाश होगा कब? जब आप यह मान लेंगे कि प्रभु अपने में हैं, अपने हैं, अभी है। यह मानने की बात हुई। मेरा कुछ नहीं है—यह जानने की बात हुई। मुझे कुछ नहीं चाहिए मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है, यह अपनी मर्जी की बात हुई। चार बातें हो गई—मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है—ये तीन बातें अपने द्वारा निर्णय करो, अपने लिए करो। और चौथी बात मान लो—प्रभु अपने में हैं, अपने हैं और अभी हैं।

अगर किसी को परमात्मा पाना हो और संसार से मुक्त होना हो तो उसे ऐसी बात बताओ कि एक बात में बेड़ा पार हो जाए। कुछ मत चाहो, कुछ मत करो, अपना करके कुछ मत रखो—इन तीन बातों से क्या होगा कि परमात्मा की तो प्राप्ति हो जाएगी और संसार की निवृत्ति हो जाएगी। हो जाएगी कि नहीं? यह बात समझ में आ गई?

संसार में रहना हो तो बुराई-रहित हो कर रहो। बुराई-रहित होना यह संसार की सबसे बड़ी सेवा है। यह संसार में रहने का तरीका है। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना

है यह अपनी सेवा है। प्रभु अपने हैं, अपने में है और अभी हैं यह परमात्मा की सबसे बड़ी सेवा है।

परमात्मा को अभी न मानना, बड़ी भारी भूल होगी, अपना न मानना उससे बड़ी भूल होगी और अपने में न मानना सबसे बड़ी भूल होगी। परमात्मा के साथ हमारे जो ताल्लुकात हैं, जो सम्बन्ध हैं वे आत्मीयता के सम्बन्ध हैं। डॉक्टर साहब; सुन रहें हैं आप? डॉक्टर साहब मेरी बात समझ रहे हैं आप? यानी परमात्मा को अपना न मानना, अपने में न मानना और अभी न मानना यह बड़ी भारी भूल होगी। परमात्मा अपना है, अपने में है और अभी है, यह मानो, यह करने की बात नहीं है। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है, यह जानो। और बुराई छोड़ कर संसार में रहो। इन तीन बातों से हृदय की आँखें खुल जाएँगी। प्रभु अपने में है, अभी हैं, अपने हैं इससे परमात्मा मिल जाएगा।

.....

- *अपने आप आने वाले सुख-दुःख का शासन अपने पर मत होने दो।*

मैंने यह कहा कि सुख का भोग मत करो; सेवा करो। आप जिस आफिस में रहते हैं, आपकी जो ड्यूटी है, उसे पूरा कीजिए। उसके बदले में जो वेतन मिलता है उसे परिवार को दीजिए और परिवार से जो टुकड़े मिलें, खा लीजिए। अधिकार मत जमाइये। जिसमें अधिकार-लोलुपता नहीं होती, कर्त्तव्य परायणता होती है, उसे कोई कठिनाई नहीं होती। ऐसा मान लीजिए, मैं निवेदन कर दूँ आपसे, ऐसा मान कर चलिए कि मुझ पर सबका अधिकार है, सारे संसार का अधिकार है। और उस अधिकार की रक्षा के लिए मुझे जानी हुई और की हुई बुराइयों से रहित होना है।

फिर जो सुख-सुविधा आपके पास आए, जो बल आपके पास आए, उसके द्वारा आवश्यक कार्य करना है। आवश्यक कार्य का मतलब है, जो ज्ञान के अनुसार हो, जो सामर्थ्य के अनुसार हो, जो समाज की माँग हो। समाज ने जो आपको ड्यूटी सौंपी है, उसे आप ठीक प्रकार से कीजिए। 8 घण्टे, 10 घण्टे, 12 घण्टे, समाज का ठीक काम कीजिए परन्तु यह मान कर मत कीजिए कि मेरा काम है। यह मान कर काम कीजिए कि मैं जो काम कर रहा हूँ, यह समाज का काम है और समाज का मालिक परमात्मा है। तो परमात्मा के होकर परमात्मा का काम कीजिए।

यदि इस भाव से आप काम करेंगे तो कार्य के अन्त में प्रियता का उदय होगा। जीवन में अगर आप परमात्मा से दूरी अनुभव करते होंगे तो उसकी स्मृति जाग्रत होगी और समीपता का अनुभव करते होंगे तो प्रियता की जागृति होगी। तो भगवत्-स्मृति और भगवत् प्रियता कार्य के अन्त में स्वतः उदित होनी चाहिए। यह प्रियता प्रभु तक पहुँचती है और प्रभु उस प्रियता को पाकर उसे कई गुना अधिक करके आपको ही दे देते हैं।

लेकिन कठिनाई क्या होती है कि अपने कर्त्तव्य पर ध्यान न देकर बीच-बीच में अपने अधिकार माँगने लगते हैं। उसका अभिमान भी कर लेते हैं, उसमें फलासक्ति भी रख लेते हैं। तब यह कठिनाई आ जाती है। इसे आप विचार करके देखिए। जिसे बुराई नहीं करना है, उसके सामने क्या कठिनाई है? जिसे की हुई भलाई का फल नहीं चाहिए, उसे क्या कठिनाई है? जिसे कोई अभिमान नहीं रखना है, उसके सामने क्या कठिनाई है? कठिनाई तो तब होती है जब हम कोई बुराई करें। या भलाई का फल माँगे तो कठिनाई पड़ेगी। या भलाई का अभिमान करें तो कठिनाई पड़ेगी। तो बुराई करना नहीं है, भलाई का अभिमान और फल माँगना नहीं है, प्रभु को प्यार देना है। उनसे भी कुछ चाहिए नहीं। संसार की वस्तु से संसार की सेवा करना है, उसके बदले में संसार से कुछ चाहिए नहीं तो कठिनाई क्या पड़ेगी।

आप विचार करके देखो, आपके पास जो कुछ वस्तु है, जो कुछ योग्यता है जो कुछ सामर्थ्य है वह मिली हुई है। आप आज काम करने योग्य है, किन्तु इतने ही बड़े पैदा नहीं हुए थे। जब आप पैदा हुए तब आप कुछ करने के योग्य नहीं थे। आपको नर्सिंग मिली, आपको खुराक मिली, आपको शिक्षण मिला तब आप कुछ करने के लायक हुए। जब आप करने के लायक हुए तब आप समाज के अधिकारों की रक्षा करने से अपने को बचाते हैं और उसका बदला चाहते हैं; उसका अभिमान करते हैं। तब आपके सामने कठिनाई आती है। नहीं तो जो मिला था उसको वापस करते रहो। प्रभु के होकर रहो, प्रभु को अपना मानो इतनी-सी तो बात है।

यदि ऐसा नहीं करोगे और सुख भोगोगे तो सुख भोगने से दो बातें सामने आ जाएँगी। एक तो भोगने की शक्ति का ह्रास हो जाएगा और एक भोग-सामग्री का विनाश हो जाएगा। तब क्या करोगे? तब क्या दशा

होगी? भोग की रुचि रह जाएगी और भोग नहीं रहेगा। इसी को तो अभाव कहते हैं। इसी को पराधीनता कहते हैं। भोग की रुचि न रहे, आपको अभाव का अनुभव न हो इसीलिए मैंने कहा कि सुख का भोग मत करो और दुःख का सदुपयोग करो।

सुख-दुःख दो अवस्थाएँ हैं। ये दोनों ही साधन-सामग्री हैं। सुख आता है उदार बनाने के लिए, दुःख आता है विरक्त बनाने के लिए। दुःख आने पर अचाह हो जाओ; सुख आने पर उदार हो जाओ। अगर तुम उदार हो जाओ तो सुख के बन्धन से छूट जाओगे। अगर तुम अचाह हो जाओ तो दुःख के भय से छूट जाओगे। अगर अचाह होना ही नहीं चाहते, उदार होना ही नहीं चाहते तो दुःख मजबूर होकर भोगना पड़ेगा, यह मैंने कहा है।

कठिनाई का प्रश्न तो तब तक है, जब तक आप इस सत्य को स्वीकार नहीं करते कि मुझे सुख में उदार होना चाहिए, दुःख में अचाह होना चाहिए और प्रभु के लिए प्रेमी होना चाहिए। ये तीन बातें अपने सामने रखिए, कि मेरे पास सुख आएगा तो मैं सेवा करूँगा, दुःख आएगा तो अचाह हो जाऊँगा और प्रभु का प्रेमी होकर रहूँगा। न मुझे प्रभु से कुछ चाहिए और न संसार से कुछ चाहिए।

अचाह हुए बिना तो काम बनेगा नहीं। और अचाह होना कोई बातों से थोड़े ही आएगा। जब ज्ञानपूर्वक यह विचार करोगे कि मेरा करके इस संसार में कुछ है नहीं। क्यों? अगर मेरा कुछ होता तो मेरे साथ रह सकता था या मैं इसके साथ रह सकता था। तो किस भाई का, किस बहन का यह अनुभव नहीं है। कौन भाई-बहन यह नहीं जानते कि संसार की कोई वस्तु सदैव मेरे साथ नहीं रह सकती। जो प्यारी से प्यारी वस्तु हो, प्यारा से प्यारा व्यक्ति हो, कितना ही अच्छा लगता हो लेकिन जब नींद लगती है तब आप उसे छोड़ देते हैं। तब यह नहीं कहते कि अब हम

सोएँगें नहीं, आपस में बातें करेंगे। या वस्तु को देखते रहेंगे या इसका उपयोग करेंगे। ऐसा नहीं होता।

तो वस्तु के बिना आप रह सकते हैं, वस्तु आपके बिना रह सकती है। यह आपका दैनिक जीवन का अनुभव है। यदि अपने अनुभव का आप आदर करना चाहें तो अचाह होना आपके लिए जरूरी हैं। अचाह होकर ही मिली हुई वस्तु का उपयोग कर सकते हैं—दुरुपयोग नहीं सदुपयोग कर सकते हैं। अचाह होने पर आपका परिवार आपसे प्रसन्न हो जाएगा, आपका समाज आपसे प्रसन्न हो जाएगा। कोई बाधा नहीं डालेगा। और अचाह होने से आप स्वयं भी प्रसन्न हो जाएँगे। आपको फिर कोई बाधा नहीं सताएगी। लेकिन कठिनाई तो यह है कि मिली हुई वस्तु है, समाज की दी हुई है और समाज को देते समय आप उसका अभिमान करते हैं। आप उसका फल माँगते हैं। आप उसके बदले में कुछ मान चाहते हैं, सो कैसे चाहते हैं? यह गलती होती है। नहीं तो अगर मेरे पास अपना कुछ नहीं है, तो मुझे काहे का भय होगा? अगर मुझे कुछ नहीं चाहिए तो मुझे काहे की अशांति होगी? आप देखिए न, भय का कारण क्या है। जब मैं यह मान लूँ, मेरे पास भी अपना कुछ है तब ही भय पैदा हो सकता है। उसके न रहने का भय हो जाएगा, उसके छिन जाने का भय हो जाएगा, उसके बिगड़ जाने का भय हो जाएगा। अगर मैं यह मान लूँ कि मिला हुआ शरीर मेरा तो नहीं है, जिस प्रकृति से मिला है, जिस प्रकृति से बना है उसी में लय हो जाएगा तो भय का प्रश्न ही नहीं होगा। हाँ, उसके उपयोग में मेरा अधिकार है। अतः मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य जो भी है आपके पास, जितनी भी है—उसका सदुपयोग कीजिए। उससे किसी को हानि मत पहुँचाइये। दूसरे के काम आइये, इतनी-सी बात है।

इसका नाम है धर्म विज्ञान। यही संसार आपसे चाहता है कि आप उसके काम आएँ। आपका परिवार भी यही चाहता है कि आप उसके काम आएँ। आपका समाज भी चाहता है कि आप उसके काम आएँ।

आप यह मत चाहिए कि समाज भी मेरे काम आए, परिवार भी मेरे काम आए।

अब आप कहेंगे कि मैं तो परिवार-समाज के काम आया और परिवार-समाज मेरे काम नहीं आया, तो उससे हानि क्या होगी; किसको हानि होगी? अगर आपका परिवार आपके शरीर की ठीक प्रकार से आवश्यकता पूरी नहीं करता, जो उसे करना चाहिए, तो उसका शरीर अधिक नहीं चलेगा। नहीं चलेगा तो हानि समाज की होगी, तुम्हारी क्या हानि होगी? लेकिन तुम इसे अपनी खुराक मत बनाओ कि मेरे परिवार को मेरे शरीर की सेवा करनी चाहिए। ऐसा प्रलोभन मत रखो। तब तो कोई कठिनाई होगी नहीं और प्रलोभन रखोगे तो अनेक कठिनाइयाँ होगी ही।

कठिनाई का मूल हुआ अपनी अधिकार-लोलुपता अथवा कठिनाई का मूल हुआ दूसरे का अधिकार न देना। अथवा कठिनाई का मूल हुआ, जो नहीं कर सकते उसे करने की सोचना और जो कर सकते हैं, उसको न करना और जो नहीं करना चाहिए, उसे कर बैठना। इन बातों से ही जीवन में कठिनाई आती है। वास्तव में जो नहीं कर सकते उसे तो करना ही नहीं है और जो नहीं करना चाहिए उसको भी करना नहीं है। तो जो नहीं करना चाहिए उसे जब आपने छोड़ दिया तो आप बुराई रहित हो गये। और जो कर सकते हैं तथा जो करना चाहिए उसमें कोई कठिनाई होती नहीं। उसका फल और अभिमान छोड़ दिया तो आप अचाह हो गए।

कर्त्तव्य-परायणता से मानव को योग की प्राप्ति होती है और अचाह होने की सामर्थ्य आ जाती है। अचाह हो जाना आध्यात्मिक जीवन की बात है। कर्त्तव्य-परायणता जो है, यह भौतिक जीवन की बात है। शुरू में दो ही बातें कहीं। आप जिस परिस्थिति में हैं, जहाँ हैं, जैसे हैं, जो कार्य आपके सामने है उसे कर्त्तव्य-बुद्धि से करो, अथवा साधन बुद्धि से करो

अथवा भगवत् नाते करो। अगर प्रभु विश्वासी हैं तो उस काम को भगवान का समझ कर करो, अगर अध्यात्मवादी है तो साधन-बुद्धि से करो और अगर भौतिक वादी हैं तो संसार का समझ कर करो। तो साधन-बुद्धि से काम करने पर भी करने के राग की निवृत्ति हो जाएगी, कर्त्तव्य-बुद्धि से काम करने से भी करने के राग की निवृत्ति हो जाएगी, भगवत् नाते काम करने से भी करने के राग की निवृत्ति हो जाएगी।

सही काम करो और न करने की स्थिति प्राप्त करो। करने का भी अन्त होना चाहिए न। तो सही काम करने के बाद करने का अन्त होगा। न करने की स्थिति को ही योग कहते हैं। इस योग में ही बोध और प्रेम है। योग होता है परमात्मा के साथ। भोग होता है संसार के साथ। तो योग को पसन्द करो, भोग को नापसन्द करो। भोग को नापसन्द करने पर संसार का सम्बन्ध तो टूट जाएगा और कर्त्तव्य मात्र रह जाएगा। संसार का सम्बन्ध टूट जाने पर भी कर्त्तव्य पूरा कर सकते हैं। कर्त्तव्य को ही धर्म कहते हैं। उसी का नाम धर्म-विज्ञान है। यही वास्तविक भौतिक विज्ञान है।

धर्मात्मा की माँग संसार को रहती है, धर्मात्मा को संसार की माँग नहीं रहती। क्योंकि धर्मात्मा किसी के अधिकार का अपहरण कर सकता नहीं अपितु सभी के अधिकारों की रक्षा करता है। और वह स्वयं अधिकार-लोलुपता से मुक्त होता है। संसार की जरूरत आपको न रहे और संसार आपकी जरूरत अनुभव करे यह है जीवन का शुद्ध भौतिकवाद। इसको कहते हैं दुनिया में रहने का सही ढंग। आफिस पसन्द करे आपको, समाज पसन्द करे आपको और आपको संसार से कुछ मतलब न रहे क्योंकि आपको अपने लिए जो चाहिए, वह तो आप में ही मौजूद है।

अध्यात्मवाद ने हमें यह प्रेरणा दी कि हमें जो चाहिए, वह हम में ही मौजूद है। इसलिए हमें संसार से अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। अब अगर आप इस सत्य को अपने जीवन में अनुभव कर लें, कि भई संसार

मुझे क्या दे सकता है। जैसे आपको अविनाशी जीवन चाहिए तो सारी दुनिया मिल कर आपको अविनाशी जीवन नहीं दे सकती। आपको स्वाधीन जीवन चाहिए, संसार से आपको स्वाधीन जीवन नहीं मिल सकता, अविनाशी जीवन नहीं मिल सकता, तो आपको जो चाहिए, वह संसार से आपको नहीं मिल सकता। इसका मतलब क्या है कि जो आपको चाहिए वह आपमें है। जो वस्तु रूप से, सामर्थ्य रूप से, योग्यता रूप से आपको मिला है उसे आप संसार की सेवा में लगा दो। इतनी-सी ही तो आपकी जिम्मेदारी हैं।

अगर मान लीजिए संसार असन्तुष्ट होता है और अधिक की माँग करता है तो ईमानदारी से कह दो कि भई, जो कुछ हमारे पास था वह हमने लगा दिया, अब हम क्षमा चाहते हैं तो संसार नाराज नहीं होगा। न परिवार आपसे नाराज होगा। लेकिन जब परिवार से आप कहते हैं कि हम तो आठ घण्टे काम करते हैं बारह घण्टे काम करते हैं और तुम हमारी यह खिदमत करते हो। तब आप भी दु:खी हो जाएँगे और परिवार में भी खिन्नता आ जाएगी। परिवार वाले कहेंगे—देखो ये हम पर अभिमान दिखाते हैं, अपने धर्म का पालन करते हैं और हम पर एहसान लादते हैं। तो अपनी की हुई भलाई का अभिमान मत करो, एहसान मत जताओ।

आजकल के माँ-बाप क्या कहते हैं, हम बच्चों को खिलाते हैं, पालते हैं। जरा सोचो, तुमने बच्चों को पैदा क्यों किया। बच्चा तुम्हारे बिना, तुम्हारी मर्जी के बिना पैदा हो गया? लायक नहीं है, नालायक सही। तुमने पैदा करते समय कौन से संस्कार रखे थे? सोचना चाहिए जो बच्चा काम से पैदा हुआ है वह कामना वाला ही होगा। और कुछ हो ही नहीं सकता। निष्काम होकर थोड़े ही सन्तान पैदा की है। तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि समाज के अधिकार की रक्षा करो, परिवार के अधिकार की रक्षा करो, संसार के अधिकार की रक्षा करो, धर्मशास्त्र में तो यहाँ तक लिखा

है। मैं वेद मंत्रों की बात बोल रहा हूँ। वेद-मन्त्र तो धर्मशास्त्र के ऊपर की चीज है वह तो अनादि और ईश्वरीय चीज है। उसमें तो यहाँ तक लिखा है कि जो पति अपनी पत्नी को दूना प्यार नहीं करता, वह चार जन्म तक स्त्री बनता है। इसका मतलब क्या है? स्त्री को प्यार दो, बच्चों के हित के लिए अपना सुख छोड़ दो। इतनी-सी तो बात है। समाज को हानि पहुँचाकर परिवार का पोषण मत करो। समाज को बिना हानि पहुँचाये परिवार की सेवा करो। परिवार की सेवा करके शरीर के लिए अधिकार मत जमाओ। अपने शरीर की जरूरतों को परिवार की मर्जी पर छोड़ दो तब देखो तुम्हें कितनी शान्ति मिलती है।

तुम अपने मन का खाना चाहते हो, अपने मन का पहनना चाहते हो और सारे परिवार पर हकूमत करना चाहते हो, उसमें अपना सुख ही देखना चाहते हो। तब पग-पग पर कठिनाई है। सुख क्या है? दूसरे लोग मेरे काम आते रहें इसका नाम सुख है। सेवा क्या है? मैं दूसरों के काम आता रहूँ इसका नाम है सेवा। सुख के भोगी को दुःख भोगना ही पड़ता है क्योंकि उसने पहले ही अपनी प्रसन्नता दूसरों पर निर्भर कर दी।

यह सम्भव नहीं है, कि संसार बेमन का हो जाए और आपके मन की बात पूरी कर दे। हाँ, आप अगर चाहें तो संसार के मन की वह बात—जो ज्ञान के अनुरूप हो, सामर्थ्य के अनुरूप हो—उसको आप पूरी कर दें। देखिए, वैसे तो सारा संसार मिल कर कोशिश करे तो एक आदमी के मन की बात भी पूरी नहीं कर सकता। हो ही नहीं सकती कभी। लेकिन अगर आप चाहें तो अपने सम्बन्धियों के मन की उन बातों को, जो ज्ञान के और सामर्थ्य के अनुसार है, उनको आप पूरा कर दें। जो सामर्थ्य-विरोधी हों उनके लिए क्षमा माँग लो, जो ज्ञान विरोधी है उनके लिए इनकार कर दो। भई, हम ज्ञान-विरोधी काम नहीं कर सकते हमें क्षमा कर दिया जाए, यह हमारी सामर्थ्य के विरुद्ध है इसे हम नहीं कर सकते। यह मत कहना

कि तुम्हारी माँग गलत है। ऐसा कहने से तो झगड़ा हो जाएगा? माँग गलत मत बतलाओ। अधिकार किसी के ऊपर मत करो। अधिकार करोगे तो मार खाओगे। किसी को रोक नहीं सकते। कहते रहिए, दु:खी होते रहिए। हाँ, सलाह दे सकते हैं मित्रवत्।

शासन से, कानून से, समझाने से बेसमझी मिटी नहीं है अभी तक। परिवार आपको भूखा मार दे तब तकलीफ कम होगी और लड़भिड़ कर खा लोगे तो अधिक तकलीफ होगी। क्योंकि भूखे मरने से तो शरीर को ही तकलीफ होगी और लड़-भिड़ कर खाने से मन को तकलीफ होगी। और मन तो मरने के साथ भी साथ चलेगा। मैं जो कहता हूँ, ठीक कहता हूँ। मैंने अनुभव करके देखा है। पंडित जी मैं आपसे निवेदन करता हूँ—मैं भी तो परिवार में ही रहता हूँ। परिवार के बाहर थोड़े ही रहता हूँ। (**पंडित जी ने कहा**—मैंने भी कई अनुभव किए हैं, परिवार के अन्दर ऐसी-ऐसी बातें आ जाती हैं जो बिल्कुल असह्य होती हैं। उनका त्याग करना चाहिए या उनकी बात मान लेनी चाहिए)। पंडित जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा, कि मैं आपसे निवेदन करता हूँ—त्याग क्या करना चाहिए, अपना कोई है ही नहीं। त्याग तो तब करें जब अपना कोई हो। ईमानदारी की बात तो यह है कि पहले ही मान कर चलो कि मेरा कुछ नहीं है, फिर मेरे को कुछ नहीं चाहिए। आप अनुभव करके देख लो। अगर आप बच्चे को सुधार सकते हैं तो सुधार लो। हमने सुधरते देखा नहीं है।

हमारा यह विश्वास रहा है कि कानून बना कर सरकार नहीं सुधार सकी, समझा-बुझा कर माँ-बाप नहीं सुधार सके, और लिखा-पढ़ा कर गुरु नहीं सुधार सके। किसको? जो नहीं सुधरना चाहता उसको। और जो सुधरना चाहता है, उसी को आपका समझाना काम आता है। तो वह तो सुधर ही जाएगा। सुधरे हुए जीवन का भी तो प्रभाव पड़ता है।

ऐसी बात थोड़े ही है कि दूसरा आदमी इतना हृदयहीन हो जाएगा कि आप भलाई करते रहेंगे, आप अधिकार छोड़ देंगे तो उसके जी में आपके अधिकार का ख्याल नहीं आयेगा। ऐसा नहीं होता। यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरे लोग इतने बुरे हो गये हैं, इतने नीच हो गये हैं कि उनमें अच्छाई का अंश नहीं रहा सो बात नहीं है। वह आपके सुधरे हुए जीवन से सँभल जाए तो सँभल जाए नहीं तो आपको ही कौन परवाह पड़ी है। मान लो, अगर आपके शरीर को सुविधा परिवार ने नहीं दी, तो जल्दी शरीर नाश हो जायेगा। शरीर से जल्दी छुट्टी मिल गई, तुम्हारा क्या बिगड़ गया। संसार हमको खाना न दे तो हमारा उससे कुछ बिगड़ता नहीं है। क्या बिगड़ेगा? खाते-खाते नहीं मरते क्या? बिना खाये मर गये। कपड़ा पहन कर मरे या नंगे मर गये। कमरे में पलँग पर मरे या जमीन पर मर गये। इसमें कोई खास फर्क नहीं पड़ता है।

एक बात मेरे गुरु ने बताई है। मैं उनकी बात में कभी सन्देह नहीं करता हूँ और उस बात मैं जितना मानता हूँ, उतना ही मुझे सत्य मालूम होती है कि अगर मनुष्य सचमुच स्वाधीन हो जाए, आजाद कहो, स्वाधीन कहो, अचाह कहो तो यह जो प्रकृति है, जड़ प्रकृति है—वृक्ष, फल, फूल खूँख्वार जानवर आदि, ये भी रक्षा करने लगते हैं। यह गुरु वाक्य है। जीवन का सत्य है।

मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि आपको दूसरों के लिए उदार होना है, अपने लिए स्वाधीन होना है, प्रभु के लिए प्रेमी होना है। प्रेमी होने में आपको स्वाधीनता है। अब परमात्मा आपके प्रेम को पाकर क्या करेगा, इसकी बिल्कुल परवाह मत करो। स्वाधीन होने में आपको स्वाधीनता है, उदार हो सकते हैं, तो संसार के काम आ जाएँगे। प्रेमी हो सकते हैं तो प्रभु के काम आ जाएँगे और स्वाधीन हो सकते हैं तो अपने काम आ जाएँगे। और इनमें से कोई एक होने से तीनों हो जाएँगे। इन तीनों में से पहले आपको स्वाधीन होना पड़ेगा।

स्वाधीन होने के लिए भूखा नहीं मरना है, नंगा नहीं रहना है और घर छोड़ कर बन में नहीं जाना है। ज्ञानपूर्वक यह अनुभव करना है कि मेरा कुछ नहीं है और दृढ़तापूर्वक निर्णय करना है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। जिसे कुछ नहीं चाहिए वह बड़ी सुगमतापूर्वक स्वाधीन हो जाता है। जिसका कुछ नहीं है उसी का यह निर्णय होता है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। निर्मम होने से ही निष्काम होने की सामर्थ्य आती है। और निष्काम होने से ही असंग होने की सामर्थ्य आती है। ऐसा नियम ही है।

असंग होने पर आप जीवन-मुक्ति का आनन्द लीजिए, निष्काम होकर शान्ति का आनन्द लीजिए, निर्मम होकर निर्विकारता का आनन्द लीजिए। तो निर्विकारता का सौन्दर्य, निष्कामता का ऐश्वर्य आपको प्राप्त हो सकता है। जिसे कुछ नहीं चाहिए उसके समान कौन महान् हो सकता है? संसार में सबसे महान् वही है जिसे कुछ नहीं चाहिए। तो मैं यह निवेदन कर रहा था, कि ज्ञानपूर्वक निर्मम होकर, निष्काम होकर, असंग होकर अपने में अपने को सन्तुष्ट कीजिए।

अपने में अपने को जो सन्तुष्ट करना है यही जीवन-मुक्ति है और इसी से भगवत्-प्राप्ति भी होती है। क्योंकि परमात्मा सदैव होने से अभी है, सर्वत्र होने से अपने में है, सभी का होने से अपना है। उसे परमात्मा नहीं कहते जो अभी न हो, उसे परमात्मा नहीं कहते जो अपना न हो, उसे परमात्मा नहीं कहते जो अपने में न हो। तो परमात्मा अभी है, अपना है, अपने में है। अभी होने से भविष्य की आशा क्या करोगे भाई? और अपने में होने से बाहर कहाँ खोजोगे भाई, और अपना होने से प्यारा लगेगा ही। तो प्रियता और समीपता वर्तमान की बात है।

संसार के जितने काम होते हैं वे भविष्य की आशा पर टिके रहते हैं, लेकिन परमात्मा की प्राप्ति की यह बात नहीं है। यह वर्तमान की बात है। परमात्मा की प्राप्ति के लिए शरीर की सहायता नहीं चाहिए, वस्तु की

सहायता नहीं चाहिए, सामर्थ्य की सहायता नहीं चाहिए, योग्यता की सहायता नहीं चाहिए। यानी परमात्मा को पाने के लिए आपको कोई सामग्री नहीं चाहिए। जब कोई सामग्री नहीं चाहिए तो शरीर का क्या अचार डालोगे? यह परमात्मा की प्राप्ति में तो काम आएगा नहीं।

शरीर के द्वारा परमात्मा के संसार की सेवा कर दो, यथाशक्ति, यथासम्भव, यथासमय। ये तीन बातें ध्यान रखो। यथा-शक्ति, यथा-सम्भव, यथा-समय शरीर के द्वारा सेवा करो—निकटवर्ती प्रिय जनों की क्रियात्मक सेवा करो और समस्त विश्व की भावात्मक सेवा करो। किसी का बुरा मत चाहो, यह भावात्मक सेवा, किसी को बुरा मत समझो यह भावात्मक सेवा और बुराई मत करो यह भावात्मक सेवा। और यथाशक्ति भलाई करो यह क्रियात्मक सेवा। तो भलाई से परिवार की, समाज की, संसार के अधिकार की रक्षा—यह भलाई होगी। और बुराई-रहित होकर सारे विश्व की, चराचर जगत् की सेवा करो। किसी को बुरा मत समझो, किसी का बुरा मत चाहो और किसी के साथ बुराई मत करो। केवल बुराई न करने मात्र से, बुरा न चाहने मात्र से, किसी को बुरा न समझने मात्र से विश्वसेवा सिद्ध हो जाएगी। आपका चित्त शुद्ध और शान्त हो जाएगा। भलाई करने से परिवार और समाज प्रसन्न हो जाएगा और उसका अभिमान और फल छोड़ देने से तुम स्वाधीन हो जाओगे। और जब तुम स्वाधीन हो गये, परिवार और समाज प्रसन्न हो गया तो यह विश्व की सेवा हो गई। यही है कर्त्तव्य-विज्ञान अथवा धर्म-विज्ञान।

•••••••

- *सत्य की खोज के लिए सर्वस्व समर्पण कर दो।*
- *निर्बलताओं को मिटाने के लिए व्याकुलतापूर्वक प्रेम-पात्र से प्रार्थना करो।*

सच्चा साधक कौन?

ऐसा मालूम होता है, कि हम अपनी वास्तविक आवश्यकता से जूझते रहते हैं। इसी का फल यह होता है कि जो हमारा दायित्व है, उसे पूरा नहीं कर पाते। यद्यपि माँग पूरी होती है; दायित्व पूरा कर सकते हैं; यह प्रभु का मंगलमय विधान है। आप विचार करके देखो—वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य का कोई उपयोग नहीं है। कारण कि जिस जीवन की माँग है, वह जीवन किसी श्रमसाध्य उपाय से प्राप्त नहीं होता। इसके लिए विश्राम, स्वाधीनता और प्रेम चाहिए। यही साधना है माँग की पूर्ति की।

अब विश्राम के लिए देखा जाए, तो आवश्यक कार्य पूरा कर लो और अनावश्यक कार्य छोड़ दो और उसके बदले में कुछ न चाहो तो क्या विश्राम नहीं मिल सकता? आवश्यक कार्य पूरा कर दो और अनावश्यक कार्य छोड़ दो और उसके बदले में कुछ न चाहो तो विश्राम मिलता है। विश्राम में स्वत: एक ऐसी अलौकिक शक्ति है कि वह हमें स्वाधीनता से अभिन्न करता है और स्वाधीनता प्रेम प्रदान करती है।

अब यह सोचिये कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कोई वस्तु चाहिए क्या? क्या राय है? "नहीं"। शारीरिक आवश्यकता अपनी वास्तविक माँग नहीं है। शारीरिक आवश्यकता सामाजिक सेवा से स्वत: पूरी होती है। समाज की उदारता से शरीर की माँग पूरी होती है और हमारे करने से शरीर की माँग पूरी नहीं होती। शरीर को बनाए रखने का जो संकल्प है, वह समाज-सेवा के लिए है। शरीर के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होती नहीं; शरीर के द्वारा जीवन-मुक्ति मिलती नहीं; शरीर के द्वारा चिरशान्ति होती नहीं।

मैंने बड़ी विनम्रता से आपकी सेवा में निवेदन किया था कि वास्तविक माँग का अर्थ यह नहीं है। भूख का लगना, रोटी का खाना,

नींद आना यह वास्तविक माँग नहीं है। क्योंकि खाते-खाते भी एक दिन न खाने की स्थिति आ जायेगी। इसलिए वास्तविक माँग की चर्चा कर रहा हूँ। और शरीर की जो जरूरतें हैं उनकी पूर्ति दो तरह से होती है—या तो किसी की उदारता से या सामाजिक कार्य से। अगर आप किसी के काम आते हैं तो वह आपके काम आता है। अपनी वास्तविक माँग की पूर्ति के लिए अपेक्षा है विश्राम की, स्वाधीनता की और प्रेम की।

विश्राम के लिए आवश्यकता है आवश्यक कार्य पूरा करना, अनावश्यक कार्य छोड़ देना। आवश्यक कार्य में तीन-चार बातें होती हैं। एक तो सामर्थ्य-विरोधी न हो, अपने ज्ञान के विरोध में न हो। जो नहीं करना चाहिए वह आवश्यक कार्य नहीं है और जो नहीं कर सकते वह भी आवश्यक कार्य नहीं है। आवश्यक कार्य उसे नहीं कहते जिसे आप पूरा नहीं कर सकते। जैसे, आप से कोई भी आशा नहीं करेगा कि आप एक लाख रुपया दान दे दीजिए। करेगा कोई? "नहीं", जो आपकी सामर्थ्य-विरोधी है उसके लिए आप क्षमा माँग लें कि यह सामर्थ्य विरोधी है, हम नहीं कर सकते। अगर कोई कहे कि अवश्य करो, तो आप कह सकते हैं कि मैं क्षमा चाहता हूँ, यह ज्ञान विरोधी है। करने वाली बात का ज्ञान और उसकी सामर्थ्य रहती है। जो करने वाली बात है उसका ज्ञान भी रहता है और उसकी सामर्थ्य भी रहती है। इसलिए आवश्यक कार्य करने में कोई पराधीन नहीं होता। और अनावश्यक कार्य करना ही नहीं चाहिए।

देह का सम्बन्ध कर्त्तव्य के साथ हुआ; योग के साथ नहीं हुआ। हमसे गलती क्या होती है कि हम कर्त्तव्य को तो छोड़ देते हैं। जैसे, भूख लगी, मान लीजिए आपने व्रत ले लिया कि भिक्षा मिलेगी तो मैं भोजन करूँगा, तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि क्या भिक्षुक को यह अधिकार है कि हम जैसा चाहें वैसा भोजन मिले? "नहीं"। और जब चाहें तब मिल जाए। अगर आपने भिक्षा का व्रत लिया है तो आपको यह अधिकार

नहीं है। हमारा व्रत तो है भिक्षा का और मन में यह बात रहे कि भूख लगी है, भोजन मिलना चाहिए तो यह किसकी भूल है? यह भिक्षुक की भूल है। अच्छा, अब भिक्षुक के पास शरीर है तो पहला व्रत तो यह होगा कि शरीर के द्वारा कोई बुराई न करे, दूसरा व्रत यह होगा कि सभी के प्रति सद्भाव रखे तथा तीसरा व्रत यह होगा कि अगर वह कुछ कर सकता है तो किसी न किसी अंश में समाज की किसी आवश्यकता को पूरा करे। जैसे आपसे कोई कुछ पूछे तो अगर आप जानते हैं तो बता दें और अगर नहीं जानते हैं तो क्षमा माँग लें। तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि आप किसी भी परिस्थिति में कर्त्तव्य के दायित्व को पूरा कर सकते हैं या नहीं?

देखो, कोई बड़े निवृत्तिपरायण है तो उन्हें भी क्या भिक्षा के लिए आग्रह करना पड़ेगा? उनसे कोई मोह-ममता होगी तो उनसे मिलेंगे? क्या धन कमाने में ही समाज का काम होगा? जो धन नहीं कमा सकते, उन पर भी तो समाज का कोई अधिकार है। कम से कम उनके जीवन में आलस्य दिखाई न दे, बुरे संकल्प उठते हुए न दिखाई दें, उनका कोई संकल्प न रहे। आप विचार करके देखिये अगर निवृत्ति-परायण कोई साधक है तो उसके ऊपर सबसे पहला यह उत्तरदायित्व होगा कि उसका अपना कोई संकल्प नहीं रहना चाहिए। अपना संकल्प रख कर कोई भी शान्ति पा सकता है क्या? संकल्प रख कर नहीं पा सकता।

अब कल्पना करो कि अपने में कोई संकल्प नहीं होगा तो उसका क्या फल मिलेगा? जिसका अपना कोई संकल्प नहीं रहता उसकी इन्द्रियाँ अविषय होने लगती हैं; मन निर्विकल्प होने लगता है; बुद्धि सम होने लगती है। तो क्या मन की निर्विकल्पता, बुद्धि की समता, इन्द्रियों की विषय-विमुखता क्या समाज द्वारा होने वाली हैं या स्वतः होने वाली हैं? स्वतः होने वाली हैं। तो क्या निवृत्तिपरायण साधक को वह जीवन नहीं मिल

सकता जो स्वत: होने वाला है? वह जीवन नहीं मिलेगा क्या? **श्रोता**—"मिल सकता है।" निवृत्ति परायण साधकों को देखना चाहिए कि हमें क्या वह स्वत: मिलने वाला जीवन मिल गया?

जब तुम बिना करे रह ही नहीं सकते, तो सेवा करने में क्या कठिनाई मालूम पड़ती है? सेवा करने में कठिनाई मालूम पड़ती है, पहरा देने में कठिनाई मालूम होती है और चाय बनाने में कठिनाई मालूम नहीं होती। यह क्या तरीका है? तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि समाज इतना उदार है कि जो हम कर सकते हैं, उसको ठीक कर दें और अचाह होकर कर दें तो समाज जो कर सकता है उसके करने से इन्कार किया है क्या? **श्रोता**—'नहीं किया'। इससे क्या सिद्ध हुआ कि साधक के साथ जगत् की उदारता रहती है, सत्पुरुषों की सद्भावना रहती है, प्रभु की कृपालुता रहती है। तो इस दृष्टि से साधक अनाथ है क्या?

क्या संसार में सभी अपने नहीं हैं किसी न किसी नाते से? अच्छा भाई, अगर सभी को अपना मान लिया तो आँख से देखोगे तो प्यार भरी दृष्टि से देखोगे या वैसे ही देखोगे? **श्रोता**—'प्यार भरी दृष्टि से।' और वाणी से बोलोगे तो प्यार भरी वाणी से। तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि अपने कर्त्तव्य से विमुख होना और समाज से उदारता की आशा रखना क्या यह सम्भव होगा? अच्छा अपने कर्त्तव्य को करना और अचाह होना; तो क्या समाज हमारे लिए अनुदार हो जाएगा?

तो न तो हम अचाह हो पाते हैं और न हम कर्त्तव्य-पालन करते हैं। अचाह भी नहीं हो सकते, कर्त्तव्यपालन भी नहीं करते हैं। अचाह भी नहीं हो सकते, कर्त्तव्य-पालन भी नहीं करते और हम सोचें कि हम तो फक्कड़ हैं। किस बात के फक्कड़ हैं कि जो मिल गया सो खा लिया और काम कुछ नहीं करेंगे। तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जो कुछ काम नहीं करता वह विरक्त कहलाता है क्या? अचाह हो कर, शान्त

होकर, स्वाधीन हो कर, प्रेमी होकर जीवन बिताओ। तो अचाह पुरुष को, शान्त पुरुष को प्रेमी, पुरुष को, स्वाधीन पुरुष को समाज नापसन्द करता है क्या? नहीं करता।

मानव-सेवा-संघ ने तो एक और अच्छी बात बताई है। वह यह बताई है कि जो सत्य हमारे अपने जीवन में आ जाएगा, वह समाज में विभु हो जाएगा। हमारे अचाह होने से समाज में अचाह होने की भावना जागेगी। हमारे प्रेमी होने से समाज में प्रेमी होने की भावना जागेगी। हमारे स्वाधीन होने से समाज में स्वाधीन होने की भावना जागेगी। हमारे निर्मम होने से समाज में निर्मम होने की भावना जगेगी।

निर्ममता की सेवा, निष्कामता की सेवा, असंगता की सेवा, अगाध प्रियता की सेवा। इस साधन-युक्त जीवन के द्वारा ही तो हम सेवा कर सकते हैं। जिसके मूल में यह बात है कि मुझे सेवा करना है, उसके जीवन में किसी प्रकार का भय आ सकता है क्या? चिन्ता आ सकती है क्या? परेशानी आ सकती है क्या? जिसे भूख लगती है और भोजन नहीं मिलता है उसे भय लगता है, चिन्तन होता है। उपाय सोचते हैं तो दूसरों की सेवा करने की बात आप क्यों नहीं सोचते?

एक बार जे० कृष्णमूर्ति से, बड़े विचारक हैं आज के युग के, किसी ने पूछा कि आप कहाँ सेवा करते हैं। उन्होंने कहा कि काम तो मैं करता हूँ। समाज के साथ जो मेरा सम्बन्ध है, यह मेरा काम है। समाज में उनसे बात करने को लोग लालायित रहते हैं तो यह समाज-सेवा हुई कि नहीं हुई। मुझे इसी काम से रोटी मिल जाती है अपने आप। शादी क्यों नहीं की? मुझे आवश्यकता नहीं इसलिए नहीं की। और उनका बाहरी चित्र देखा आपने? तो उनका अमेरिका जाना उसी तरह है जिस तरह हमारा आगरा जाना। क्यों? उनके पास निमंत्रण आते रहते हैं। संसार के लोग उनसे बात करने के लिए लालायित रहते हैं तो यह समाज की सेवा हुई

कि नहीं? हमारे सामने छोटे-छोटे काम बहुत-से रहते हैं लेकिन हम काम करने के लिए लालायित नहीं रहते। हम तो अपनी जरूरत पूरी करने के लिए लालायित रहते हैं। यदि आपको विरक्त होना है, फक्कड़ होना है तो अपनी जरूरतों को भूलना है कि नहीं। उनको छोड़ना है कि नहीं? हम अपनी जरूरतों को छोड़ेंगे नहीं, दूसरों के काम आएँगे नहीं और समझते है कि हम फक्कड़ हो गये।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि या तो तुम शारीरिक श्रम छोड़ दो। इसकी तलाश करने की क्या जरूरत है कि हम यहाँ जाएँगे, वहाँ जाएँगे, यह करेंगे वह करेंगे। सो तो हम छोड़ते नहीं और समाज के किसी काम में हाथ लगाते नहीं। समाज आपसे यह आशा करता है कि हमें कोई सच्ची बात सुनने को मिलेगी, हमें जीवन की किसी न किसी समस्या का हल मिलेगा। जैसे—आज कोई दु:खी आ जाए मेरे पास, तो क्या मैं धन के द्वारा उसका दु:ख दूर कर सकता हूँ? सो तो नहीं कर सकता। लेकिन मैं उसे उचित परामर्श दे सकता हूँ कि नहीं?

हम तो कहते हैं कि आदमी बैठा रहे चुपचाप और उचित परामर्श देता रहे और इतना ही सब्र करे, ज्यादा नहीं, कि अगर समाज मुझे भूखा देखना चाहता है या भूखा मारना चाहता है तो मैं बड़ी शान्ति से, धीरज से भूखा मर जाऊँगा लेकिन कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जो समाज नहीं चाहता है। लेकिन हम ऐसा सोचते ही नहीं हैं। तो कृष्णमूर्ति जी की जरूरत को पूरा करने के लिए समाज लालायित नहीं रहता क्या? क्या राय है? जरूर रहता है। अगर तुम हाथ से तोड़ कर रोटी खा सकते हो तो हाथ से कुछ काम ही कर लो। क्या ऋषि-मुनि सेवा नहीं करते थे? आप बिना सेवा के रह कैसे सकते हैं? बिना त्याग के रह कैसे सकते हैं? बिना प्रेम के रह कैसे सकते हैं। तो सेवा करें नहीं, त्याग करें नहीं, प्रेम करे नहीं, तो साधक संज्ञा कैसे हो जाएगी? हम तो सच कहते हैं

आपसे कि हम तो निवृत्ति मार्ग के साधकों के लिए तरसते हैं। कोई माई का लाल मिले तो सही जो निवृत्ति-पथ का साधक हो। आखिर तुम मानव हो। मानव होने के नाते तुम्हारा कोई आदर्श होना चाहिए। जब जिसे जो अच्छा लगा सो ठीक, तो यह पागलपन है कि आदर्श? दृढ़तापूर्वक आप अपने जीवन का रहन-सहन निश्चित कर लीजिए। अपना कोई आदर्श बनाइये। मानव-सेवा-संघ के सिद्धान्त में यह मानसिक रोग है कि प्राप्त का अनादर और अप्राप्त का चिन्तन, अप्राप्त की रुचि और प्राप्त से अरुचि। यही मानसिक रोग है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि यदि आप निवृत्ति-परायण साधक हैं तो यह बहुत अच्छी बात है। मुझे बहुत खुशी है। इससे बढ़ कर खुशी की कोई बात हो नहीं सकती कि तुम अचाह हो, अप्रयत्न हो, अचिन्त हो। ये साधक के लक्षण हैं, सिद्ध के लक्षण नहीं होते। 'मेरा कुछ नहीं है' इस व्रत को पहले लें। तब मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है इस व्रत को लें। अचाह होकर, अकिंचन होकर; अप्रयत्न होकर, तब क्या होगा। जिसे अपने लिए कुछ नहीं करना है उसका देह से तादात्म्य टूट जाएगा। अचाह होने पर अशान्ति मिट जाएगी। अकिंचन हो जाने पर विकार पैदा नहीं होंगे। तो तुम्हें निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता मिल जाएगी। इन तीन बातों से।

मेरा कुछ नहीं है यह बात मानने का अर्थ यह होता है, कि शरीर भी मेरा नहीं है। तो शरीर के द्वारा अथवा संसार की वस्तुओं के द्वारा संसार की सेवा करो; यथाशक्ति करो; सामर्थ्य विरोधी मत करो और संसार की मर्जी पर अपने शरीर को छोड़ दो। इतनी-सी तो बात है। निवृत्ति-पथ के साधक क्या करते हैं? अपने जरूरी संकल्पों को संसार के संकल्प पर छोड़ देते हैं और किसी न किसी रूप में मूक होकर, बातचीत करके, अपने चरित्र का निर्माण करके समाज-सेवा करते हैं। चरित्र-निर्माण से भी

समाज-सेवा होती है; मूक होकर भी समाज-सेवा होती है और अपने जीवन में साधना को अपना कर भी समाज-सेवा होती है।

साधक का अर्थ ही यह है कि जो सभी के लिए उपयोगी हो अथवा किसी के लिए भी अनुपयोगी न हो। अगर आप किसी के लिए अनुपयोगी नहीं होते तो इस सत्य को अपना कर आप हमें दिखाइये, आप काम मत कीजिए, कुछ मत कीजिए, लेकिन यह भी मत सोचिये कि मझे ठीक तरह से रोटी मिल जाय। जो मिले सो खा लीजिए। यह सिद्ध का लक्षण है कि साधक का? यह साधक का लक्षण है।

मुझे भूख लगी है इस कारण रोटी मिलनी ही चाहिए और आदरपूर्वक मिलनी चाहिए और काम करने में सोचते हैं कि मेरा जी नहीं लगता, मैं कैसे करूँ? यह जो मानव-सेवा-संघ में काम लगाए गए, हम भी तो निवृत्ति-पथ के साधक है तो इसलिए थोड़े ही काम लगाए गए कि आपको काम करना ही है। वह तो इसलिए लगाए गए कि, ईमानदारी से पूछा जाए तो, आपसे काम किए बिना रहा नहीं जाता। यह आपका भ्रम है कि बिना करे रह सकता हूँ।

अगर कोई आदमी बिना काम करे रह सकता है तो बड़ी सुन्दर जात है। मत करो। लेकिन बिना करे नहीं रह सकते तो गलत काम मत करो।

मेरा ध्यान कब लगता है, मुझमें अच्छे विचार कब उठते हैं? जब मैं अकेला घूमता हूँ तब उठते हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप अकेले कैसे घूमोगे? तुम जिस रास्ते पर चलते हो, और नहीं चलते उस पर? क्या राय है? **श्रोता**—'परिस्थितिवश ऐसा होता है।' परिस्थिति से क्या मतलब? **श्रोता**—'बात करते हैं।' बात कुछ नहीं करते बोले बिना तुमसे रहा नहीं जाता। तुम दूसरों के दोष देखते रहते हो और अकर्मण्य रहते हो। मैं आपसे कहता हूँ कि आपने कोई ऐसा आदमी देखा है, जो

यहाँ से चला जाए किसी ऐसी जगह जहाँ से लौटे ही नहीं, फिर दोबारा वहाँ पहुँचे ही नहीं। कल्पना तो कर सकते हो पर करके नहीं दिखा सकते। तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि यह मानसिक रोग है, यह विरक्ति नहीं है। विरक्त के पीछे तो दुनिया दौड़ती है। दुनिया उसे पसन्द करती है। यहाँ राम कृष्ण मिशन का एक ब्रह्मचारी विरक्त हो गया है, वृन्दावन में ही रहता है, उसके पीछे दौड़ कर ढूँढते रहते हैं लोग उसे। श्रीपाद को ढूँढते रहते हैं लोग। उनकी न तो कोई जगह निश्चित है और न कोई ठिकाना ही।

माँग को जाग्रत करो। मुझे स्वाधीन जीवन चाहिए उसके लिए तुम्हारे मन में व्याकुलता होनी चाहिए। मैं स्वाधीनता के बिना नहीं रह सकता अगर यह माँग जग जाए तब भी तो काम-नाश हो जाएगा। और काम-नाश हो जाय तो माँग पूरी हो जाए। तो साधक को किसी अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन नहीं करना है, न अप्राप्त वस्तु का चिन्तन करना है और न प्राप्त वस्तु, परिस्थिति का दुरुपयोग करना है। फिर देखो मन शान्त होता है कि नहीं, बुद्धि सम होती है कि नहीं और तुम्हारे अन्दर दैवी शक्तियों का उदय होता है कि नहीं। दैवी शक्तियाँ भी उदय हो सकती हैं।

तो मानव-सेवा-संघ-आश्रम तो एक प्रयोगशाला है। आप बैठ कर प्रयोग कर लीजिए। यहाँ यह नहीं है कि वेदान्त सिखाया जाएगा कि तुमको भक्ति सिखाई जाएगी। जो तुम्हारी मर्जी हो सो सीखिए लेकिन प्रयोग करके देखिए।

लोग कहते हैं कि भेद नाश नहीं होता। अरे भेद नाश नहीं होता कि चाह नहीं छोड़ते। बिना अचाह हुए भेद नाश हो जाएगा? बिना असंग हुए कोई अचाह हो जाएगा? बिना निर्मम हुए कोई असंग हो जाएगा। निर्मम (ममता रहित) हम नहीं होते, निष्काम हम नहीं होते, असंग हम नहीं

होते, उदार हम नहीं होते, धर्मात्मा हम होना नहीं चाहते, जीवन मुक्त हम नहीं होना चाहते, भगवद्भक्त हम नहीं होना चाहते तो भेद कैसे मिट जाएगा? भेद क्या बातों से मिट जाएगा?

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि आप महानुभावों की यह बात जँचे, रुचे, पसन्द आ जाए तो एक क्षण भी तुम्हारा या तो वृत्ति का एक कण भी न हो, पक्की निवृत्ति या सर्वहितकारी वृत्ति का उदय हो। या तो सेवा करो या शान्त रहो। तब आपको प्रेम रूपी धन मिलेगा। सेवा और त्याग के बिना प्रेम किसी को नहीं मिलता और प्रेम रूपी धन जिसको प्राप्त हो जाता है तो प्रेम संसार को भी पसन्द है, प्रेम अपने को भी पसन्द है और प्रेम परमात्मा को भी पसन्द है। यदि तुम अध्यात्मवादी हो तो आत्मरति में मिल जाइये, यदि तुम ईश्वर वादी हो तो प्रभु प्रेम में मिल जाइये और अगर तुम भौतिकवादी हो तो विश्व-प्रेम में मिल जाइए।

मैं कहता हूँ कि दुनिया के बड़े-बड़े आदमियों ने सेवाएँ की हैं, वह प्रेमी होकर की हैं। भगवान बुद्ध के जीवन की बात है कि अंगुलिमाल बड़ा भारी भक्त हो गया। भगवान बुद्ध ने एक स्थान पर चौबीस चातुर्मास किए यानी चौबीस वर्ष तक वहाँ आते रहे। **श्रोता**—यह व्यक्तिगत भिन्नता है। हाँ, आपकी व्यक्तिगत भिन्नता यह है कि समाज की कमाई खाते रहो और काम न करो। अरे पंडित जी, सेवा कार्य करने वाला आश्रम से माँगता नहीं है। काम क्या करता है? मौज आ गई तो कर लिया नहीं तो छोड़ दिया। मस्तराम बाबा है। कितना विरक्त आदमी है। कितना घूमा है। अब एक जगह बैठ गया तो मेला लग गया कि नहीं? आप देखिए कितनी सेवा करता है। साधुओं को भोजन मिलता है दोनों वक्त, आरती-पूजा होती है। तो मैं यह निवेदन करना चाहता था कि तुम निवृत्ति मार्ग के साधक बनना चाहते हो तो चाहो तो निवृत्ति परायण हो जाओ चाहे सेवा परायण हो जाओ। निवृत्ति में एक योजन से ज्यादा चलने का निषेध है।

ज्यादा से ज्यादा चार कोस चलो। सूर्योदय के बाद चलो और सूर्यास्त से पहले बैठ जाओ। किसी के मठ में मत जाओ, मंदिर में मत जाओ, घर में मत जाओ, आश्रम में मत जाओ। है कोई माई का लाल जो इस प्रकार निवृत्ति मार्ग पर चल सके।

इसलिए मेरा मतलब था—अपनी माँग को न भूलें अपनी जिम्मेदारी को न भूलें। माँग पूरी हो जाएगी और जिम्मेदारी उतनी ही है जितनी तुम कर सकते हो ईमानदारी से। उदार होने की जिम्मेदारी है, स्वाधीन होने की जिम्मेदारी है, प्रेमी होने की जिम्मेदारी है। उदार होने की आवश्यकता अनुभव करो, प्रेमी होने की आवश्यकता अनुभव करो, स्वाधीन होने की आवश्यकता अनुभव करो। आपको सफलता अवश्य मिलेगी यह निर्विवाद सत्य है। और इसके साथ प्रभु की कृपालुता, जगत् की उदारता और सन्त की सद्भावना रहती है। साधक अनाथ नहीं है।

साधक को ममता-रहित होना है। ममता शब्द का क्या अर्थ समझा आपने? अगर सभी को अपना मानो तो ममता नहीं कहलाती। और किसी को अपना मानो और किसी को अपना मत मानो इसका नाम ममता है। यह कैसे छूटे? तो इसके सम्बन्ध में दो उपाय बतायें हैं। पहला उपाय तो यह है कि अपने ज्ञान के द्वारा इस बात का अनुभव कर लें कि सही अर्थ में मेरा कुछ नहीं है। ऐसी कौन-सी वस्तु मुझे मिली है अथवा ऐसा कौन-सा साथी मुझे मिला है कि जो मेरे बिना न रह सके और जिनके बिना मैं न रह सकूँ। तो जिसके साथ मेरा नित्य सम्बन्ध नहीं रह सकता उसको अपना नहीं मानना चाहिए। उसकी सेवा करनी चाहिए। हमसे गलती क्या होती है कि हम अपना तो मान लेते हैं और सेवा करते नहीं। जैसे—शरीर है यह भी तो सदैव मेरे साथ नहीं रह सकता न मैं इसके साथ रह सकता हूँ। तो मुझे चाहिए कि मैं शरीर की सेवा करूँ, उसे अपना

न मानूँ। ऐसे ही सम्बन्धी हैं। सभी सम्बन्धी न तो मेरे साथ सदैव रह सकते हैं और न मैं सदैव उनके साथ रह सकता हूँ। तो सेवा करना और अपना न मानना इससे ममता नाश हो जाती है और इसका फल होता है कि मनुष्य को निर्विकारता प्राप्त होती है। उसके चित्त में किसी प्रकार का विकार नहीं रहता। निर्विकारता बिना निर्ममता के प्राप्त नहीं होती।

अब आप कहेंगे कि प्रियजनों की ममता तो छूट जाएगी सेवा करने से और अपना न मानने से परन्तु सारी सृष्टि की ममता कैसे छूटेगी। सारी सृष्टि की सेवा नहीं की जा सकती। सारी सृष्टि के प्रति सद्भाव रखने से और अपना न मानने से हम सृष्टि के प्रति निर्मम हो सकते हैं। क्रियात्मक सेवा आप सीमित कर सकते हैं न? तो सीमित क्षेत्र में क्रियात्मक सेवा करते हुए सभी के प्रति सद्भाव रखना सम्भव है।

अब सेवा का अर्थ क्या है? सेवा का अर्थ है कि जिसके बदले में हम सुख का भोग न करें। जैसे—आपने कोई सेवा की और मन में ऐसा प्रतीत हुआ कि हम बड़े उदार आदमी हैं, हमने बड़ी सेवा की है। यह किया, वह किया। अब आपने इससे बड़ा सुख लिया तो सेवा नहीं भोग हो गया। भोग और सेवा में यही बड़ा भारी अन्तर है कि सेवा होती है दूसरों के हित के लिए और भोग होता है अपने सुख के लिए। हम जो कुछ भी करने वाली बात है वह तो करें लेकिन उसके बदले में सुख न भोगें। अगर सुख भोगेंगे तो उसका नाम भोग हो जाएगा और अगर भोग हो जाएगा तो क्या मिलेगा हमको—मोह और आसक्ति। तो आप सोचिए कि क्या हमें मोह और आसक्ति पसन्द है। अगर हम सुख का भोग करेंगे तो मोह और आसक्ति में आबद्ध हो ही जाएँगे। और अगर सेवा करेंगे तो बोध और प्रेम से अभिन्न हो जाएँगे। अब सेवा करना चाहिए या भोग करना चाहिए, यह अपने आप देखिए।

सेवा कैसे करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिए। सामर्थ्य के अनुसार, विवेक के अनुसार सेवा करनी है। ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार ही सेवा की जाती है।

ज्ञान-विरोधी सेवा करनी नहीं है और सामर्थ्य-विरोधी सेवा कर ही नहीं सकते आप। सेवा का अर्थ होता है अपना सुख बाँटना। किसी की आवश्यकता को पूरा करना तो अपने हाथ में है नहीं, अपना सुख बाँटना हाथ में है। तो हमारे पास सुख की जो वस्तु हो—शरीर का सुख है तो शरीर से सेवा करना, मन से सद्भाव रखना, बुराई-रहित होना। यह सेवा कहलाती है। मन, वाणी, कर्म से अगर हम बुराई-रहित हो जाएँ तो यह सारे विश्व की सेवा कहलाती है। और ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार दूसरों के काम आ जाएँ यह समाज-सेवा कहलाती है और यदि अचाह हो जाएँ तो यह अपनी सेवा कहलाती है। यदि हम प्रभु की प्रियता प्राप्त कर लें तो यह प्रभु की सेवा कहलाती है।

तो विश्व-सेवा भी करना है, समाज-सेवा भी करना है, अपनी सेवा भी करना है और प्रभु की सेवा भी करना है। अब प्रश्न होगा कि हमने अगर बुराई करना छोड़ दिया तो सेवा कैसे हो गई? कोई भलाई तो की नहीं। मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होने का फल मिलता है कि हम भले हो जाते हैं। हम भले होते हैं पहले। बुराई छोड़ने से बुराई छोड़ने वाला भला हो जाता है। और भला होने से भलाई स्वतः होती है। तो सेवा हो गई कि नहीं? हम भले हो जाएँ और भलाई न हो यह हो ही नहीं सकता। यह बड़ी गम्भीर बात है। जैसे किसी ने कह दिया कि हम तो बड़े असमर्थ है, हम क्या सेवा करें। हमने कहा कि भैया तुम असमर्थ हो अगर तो बुराई-रहित होना सीखो। मैं मन से भी किसी की बुराई नहीं करूँगा, कर्म से भी किसी की बुराई नहीं करूँगा। किसी को बुरा नहीं समझूँगा तो बुराई-रहित होने से हम भले होते हैं और भले होने से भलाई होती है। और भलाई का फल न चाहने से; अचाह होने से अपनी सेवा होती है।

अब तीन बातें हमारे सामने आई। यदि हम अचाह हो जाएँगें तो अपनी सेवा कर पाएँगें और अगर बुराई-रहित हो जाएँगें तो हम 'अहं' की सेवा कर पाएँगे और जब हम भलाई करेंगे तो निकटवर्ती प्रिय जनों की सेवा कर पाएँगे। तो समाज की सेवा हुई मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होने पर। मन में बुरा ख्याल नहीं है, न बुरा काम करते हैं और न बुरा ख्याल उठाते हैं तो यह 'मैं' की सेवा हुई।

प्रश्नकर्त्ता—मैं और अहं में क्या फर्क है? **स्वामी जी**—फर्क यह है कि अहं जो तत्त्व हैं वह समष्टि के लिए कहते हैं, सबको मिला कर जैसे—विश्वोहम्, शिवोहं, 'जगतोहम्'। अहं के अन्दर आ जाता है जगत् और 'मैं' के अन्दर मैं हूँ। तो मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित होने से विश्व-सेवा हुई तो हम भले हो गये। इस प्रकार विश्व-सेवा से मैं की सेवा हो गई। और जब हम भले हो गए और भलाई होने लगी तो परिवार की सेवा हो गई, समाज की सेवा हो गई। और बदले में कुछ नहीं चाहिए तो यह अपनी सेवा हो गई।

अपनी सेवा क्या होगी कि हम स्वाधीन हो जाएँगे। हमें शान्ति मिल जाएगी। स्वाधीन होना यह अपनी सेवा है। और अगर हम प्रभु को अपना करके स्वीकार कर लेंगे तो प्रभु-प्रेमी हो जाएँगे। प्रेमी होना प्रभु-सेवा, स्वाधीन होना अपनी सेवा, भलाई करना समाज-सेवा और बुराई-रहित होना विश्व-सेवा।

श्रोता—सेवा करने पर सफलता मिलती है? **स्वामी जी**—हाँ। मेरे सामने एक ऐसी परिस्थिति आई। मेरे पास मेरा करके तो कुछ था नहीं। जिनकी सेवा की उन्हीं का था। और वे मेरा आभार मानते हैं, यह तो बड़े दुःख की बात है। मैं क्या बताऊँ? सेवा का रहस्य बड़ा विचित्र है। किसी को किसी ने घायल कर दिया। मार-पीट हो गई और वह मरणासन्न स्थिति में हो गया। पुलिस आ गई और उससे पूछा कि किसने मारा? अब

उसका उत्तर सुनिये। उसने कहा कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे मरने से मेरी विधवा माँ को बड़ा कष्ट होगा, मेरी पत्नी को बड़ा कष्ट होगा, मेरे मासूम बच्चों को बड़ा कष्ट होगा। अब मेरे मरने से यह सब कष्ट होगा क्योंकि मैं अब बच नहीं सकता। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि जिसने मुझे मारा है, उसकी माँ को, पत्नी को और बच्चों को कष्ट हो। क्या मानी है इसका? **श्रोता**—यह तो बहुत बड़ी बात है। **स्वामी जी**—बड़ी बात तो है न और मान लीजिए कि जिसने मारा था उसका वह नाम ले देता तो वह जिन्दा रह जाता क्या? देखा आपने? वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा, परन्तु यह क्या है? यह सभी के प्रति सद्भाव अर्थात् विश्व-सेवा है। बुराई-रहित होना सद्भाव है न? तो विश्व-सेवा है यह।

अत: विधान क्या हुआ? बुराई के बदले में क्या करना चाहिए। देखो भलाई तो आदमी तब करेगा, जब वह भला होगा। यह बड़ी पेचीदा बात है। हमसे गलती क्या होती है कि हम बल-पूर्वक भले बनने लगते हैं और भले होते नहीं। जैसे कोई निर्लोभ होगा तो उदार होगा। तो निर्लोभ तो होते नहीं और बल-पूर्वक उदारता दिखाते हैं। तो यह पुण्यकर्म हो जाता है, सेवा नहीं होती।

जब अपना देश स्वतन्त्र हुआ तो मैंने प्रश्न पूछा था डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी से कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब नेता मिनिस्टर हो जाएगा तो सेवक कहाँ से आएगा। अब सोचिए जरा अगर जय प्रकाश भाई मिनिस्टर हो जाते तो आज नेतृत्व कर सकते थे क्या? नहीं कर सकते थे। इसलिए मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि भलाई आपके द्वारा हुई और आपने उसके बदले में कुछ चाहा नहीं तो आपकी इस भलाई का प्रभाव दूसरों के हृदय पर पड़ेगा कि नहीं? हमारी किसी बात से दूसरों का हृदय यदि बदले तो यह हमारे द्वारा स्थायी सेवा हुई।

▪▪▪▪▪▪▪

विवेक और विश्वास

विवेक का अनादर मत करो अर्थात् जो आप जानते हो सो मान लो। क्या जानते हो, मेरे साथ कोई बुराई न करे। तो तुम किसी के साथ बुराई मत करो। यह साधन हो गया। मेरा कोई बुरा न चाहे, तो भाई, किसी का बुरा मत चाहो। मुझे कोई बुरा न समझे, तो किसी को बुरा मत समझो। यह जीवन का सत्य है। इसका फल क्या होगा? इसका फल यह होगा कि संसार तुमको पसन्द कर लेगा। दूसरी बात क्या है? आप जानते हो कोई ऐसी उत्पन्न हुई वस्तु नहीं है, जो सदैव तुम्हारे साथ रह सके अथवा तुम उसके साथ रह सको। जानते हो कि नहीं? इसलिए मेरा कुछ नहीं है क्योंकि वह मेरे साथ नहीं रह सकता और मैं उसके साथ नहीं रह सकता। यह विवेक का आदर हो गया। इसका मतलब क्या हुआ? बुराई-रहित होने से संसार ने आपको पसन्द कर लिया और मेरा कुछ नहीं है इस बात से आपने संसार को नापसन्द कर दिया। मेरा है ही नहीं तो पसन्द क्या करूँ।

अब आप विचार करो कि संसार आपको पसन्द करे और आप संसार को नापसन्द करें, तो इसमें कैसा मजा आएगा? संसार को नापसन्द करने से आप लोभ से, मोह से, अभिमान से, दीनता से, परिच्छिन्नता से विकारों से मुक्त हो गए। आप निर्विकार हो जाएँगे। और संसार आपको इस लिए पसन्द करेगा क्योंकि आप बुराई नहीं करते हैं, किसी का बुरा नहीं चाहते हैं, आप किसी को बुरा नहीं समझते हैं। ऐसा आदमी ही संसार को पसन्द आता है।

यदि आपने यह व्रत लिया कि मैं तो साधक हूँ। मुझे अधिकार नहीं है किसी को बुरा समझने का। कोई बुरा है या नहीं, यह मतलब नहीं है, इसकी बात नहीं कही गई। मैं साधक हूँ, मैं जानता हूँ कि मुझे कोई बुरा समझेगा तो मुझे बुरा लगेगा। अत: मैं किसी को बुरा नहीं समझूँगा।

मैं किसी का बुरा नहीं चाहूँगा, मैं किसी के साथ बुराई नहीं करूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे साथ कोई बुराई करेगा तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा। मेरा कोई बुरा करेगा तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तो मैं न किसी को बुरा समझूँगा, न किसी का बुरा चाहूँगा और न किसी के साथ बुराई करूँगा। इसलिए संसार आपको पसन्द कर लेगा। और संसार आपको पसन्द कर लेगा तो तुम्हारा यह शरीर है न, उसके निर्वाह में तुमको बहुत सुविधा हो जाएगी। यानी तुम्हारा भोजन करना भी संसार को अच्छा लगेगा। तुम्हारा कपड़ा पहनना भी संसार को अच्छा लगेगा, तुम्हारा जिन्दा रहना भी संसार को अच्छा लगेगा। यह नियम है, कि संसार जिसे पसन्द कर लेता है यथाशक्ति उसकी सेवा करता है।

यह तो हुआ व्यक्तियों वाला संसार और जो मूल संसार है वह तो सब की सेवा करता ही है। जो बुराई करता है, अगर मूल संसार उसकी सेवा न करे तो वह रह ही नहीं सकता। तो संसार के दो रूप हैं—एक संसार का मूल रूप जिसको प्राकृतिक शक्तियाँ कहते हैं और एक संसार का सामान्य रूप जिसको मनुष्य-समाज कहते हैं, प्राणी-समाज कहते हैं। जो बुराई-रहित हो जाता है, उसको प्राणी-संसार भी पसन्द करता है और अव्यक्त संसार तो सभी को पसन्द करता है। नहीं तो, जो बोलना चाहे और प्रकृति बोलने की शक्ति छीन ले। समष्टि शक्तियों के बिना तो कोई काम होता ही नहीं है। मनुष्य की व्यक्तिगत (पर्सनल) शक्ति कोई काम नहीं करती जब तक कि समष्टि शक्ति उसके साथ न हो। समष्टि संसार जो है, अव्यक्त संसार जो है वह तो चोर को भी सूर्य का प्रकाश देता है, चोर भी साँस ले सकता है, चोर की भी जल प्यास बुझाता है। वह तो सबके साथ उदारता का व्यवहार करता ही है, परन्तु प्राणी-संसार जो है वह उसी के साथ उदारता का व्यवहार करता है, जो किसी के साथ बुराई नहीं करता, किसी को बुरा नहीं समझता और किसी का बुरा नहीं चाहता।

यह ज्ञान का आरम्भ समझ में आया या नहीं? इससे स्थिति क्या पैदा हुई? इसका क्या नाम रखा जाए? अगर जो किसी को बुरा नहीं समझता, किसी के साथ बुराई नहीं करता, किसी का बुरा नही चाहता—मैंने यह नहीं कहा कि भलाई करता है या नहीं लेकिन बुराई नहीं करता, मानव-सेवा-संघ की भाषा में वह धर्मात्मा है। धर्मात्मा वह है, जो किसी का बुरा नहीं चाहता, किसी को बुरा नहीं समझता और जो किसी के साथ बुराई नहीं करता। धर्मात्मा को बोध नहीं मिलता, योग मिलता है।

दूसरी बात जो इस बात को जानता है कि मैं सदा संसार के साथ नहीं रह सकता, संसार मेरे साथ सदैव नहीं रह सकता उसको विवेकी बताया। उसको धर्मात्मा के आगे की सीढ़ी बताई कि वह विवेकी है। उसने विवेक का आदर किया और यह जान लिया कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए उसे अपने लिए कुछ करना नहीं होता। उसके द्वारा होने वाली प्रवृत्ति संसार के लिए उपयोगी होती है। तो प्रवृत्ति का संसार के लिए उपयोगी होना यह धर्मात्मा है और मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा कुछ नहीं है, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है तो यह विवेकी हो गया। जो विवेकी होता है उसे जीवन-मुक्ति मिलती है। धर्मात्मा को योग मिलता है, विवेकी को मुक्ति मिलती है अर्थात् जीवन-मुक्ति। हालाँकि धर्मात्मा होने में ज्ञान का ही आदर है और मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है, इसमें भी ज्ञान का ही आदर है। विवेक का आदर कहो, ज्ञान का आदर कहो, एक ही बात है।

ज्ञान के आदर से आप धर्मात्मा भी हो सकते हैं और ज्ञान के आदर से आप विवेकी होकर मुक्त भी हो सकते हैं। विवेकी होने से आप चिरशान्ति पा सकते हैं, निर्विकारता पा सकते हैं। निर्लोभता, निर्मोहता, निर्ममता, समता, अखण्ड प्रसन्नता यह आपको विवेक के आदर से मिल

सकती है। धर्मात्मा होने से आप संसार को प्यारे लग सकते हैं और आपको योग मिल सकता है। योग कहो, मुक्ति कहो, ये दोनों चीजें आपको मिल गई।

प्रीति के लिए, इस संसार में मेरा कुछ नहीं संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिए इससे संसार का सम्बन्ध टूट गया तो प्रभु के सम्बन्ध को स्वीकार करना। संसार का सम्बन्ध विवेक-विरोधी था किन्तु प्रभु के सम्बन्ध में विवेक का समर्थन नहीं है। परमात्मा है यह बात विवेक से सिद्ध नहीं है। जीवन में स्वाधीनता मिल सकती है, यह विवेक से सिद्ध है। जीवन में निर्विकारता मिल सकती है, यह विवेक से सिद्ध है, सर्वदुःखों की निवृत्ति हो सकती है, यह विवेक से सिद्ध है। जीवन में उदारता आ सकती है, यह विवेक से सिद्ध है। इन सबमें विवेक का समर्थन है लेकिन परमात्मा है इसमें विवेक का समर्थन नहीं है।

आपको विवेक के साथ-साथ एक आस्था का तत्त्व भी मिला है, एक विश्वास का तत्त्व भी मिला है। तो विश्वास के द्वारा तो यह स्वीकार करो कि परमात्मा है और विवेक के द्वारा संसार का सम्बन्ध अस्वीकार करो। संसार के सम्बन्ध की अस्वीकृति विवेक से हुई और परमात्मा की स्वीकृति विश्वास से हुई। यह बात समझ में आई न? तो परमात्मा के सम्बन्ध की स्वीकृति किस के द्वारा हुई? विश्वास के द्वारा। और संसार के सम्बन्ध की निवृत्ति किसके द्वारा हुई? विवेक के द्वारा।

अब बुराई-रहित होने के बाद जो भलाई करने की प्रवृत्ति आई; बल के सदुपयोग की जो बात आई उसके सम्बन्ध में विचार करना भी आवश्यक है। बुराई नहीं करेंगे, तो बिना कुछ किए रहा जाता है क्या? तो बिना किए रहा नहीं जाता, तब भलाई करेंगे लेकिन भलाई करेंगे किस लिए?

जैसे, मान लीजिए, कल्पना कीजिए थोड़ी देर के लिए कि एक कोई दाता हो; दानी हो और दानी होना चाहता हो, अगर कोई भिखारी न हो

तो वह दानी हो सकता है क्या? तो दानी होने के पहले भिखारी हो चुका या नहीं? सोचिए, भिखारी ने दानी का उपकार किया या दानी ने भिखारी का उपकार किया? अगर भिखारी विवेकी है, अगर भिखारी धर्मात्मा है, तो वह दानी के साथ उपकार करेगा या दानी उसके साथ उपकार करेगा? बोलो—वह तो विवेकी है, अचाह है, उदार है, उसे तो नहीं चाहिए संसार। हाँ अगर दोनों विवेकी हों तो? अगर दानी हो अविवेकी और भिखारी हो विवेकी तो उपकार किसका? भिखारी का। और यदि दानी हो विवेकी और भिखारी हो अविवेकी तो सेवा किसकी? दानी की। कहने का मतलब यह है कि विवेकी होना धर्मात्मा होना यह मनुष्य मात्र के लिए कानून है।

आज यह कहा जाता है, हमारी सरकार कहती है कि जिसके पास ज्यादा पैसा है, उससे टैक्स लगा कर छीन लो। सर्वोदय वाले कहते हैं कि समझा-बुझा कर बँटवा दो। मानव-सेवा-संघ कहता हैं कि अपना मत मानो। अब यह बात तो सोचो कि इसमें ज्यादा जोरदार चीज कौन-सी है? टैक्स लगा कर जब छीनती है सरकार तो इनकम टैक्स-एक्ट पर क्या कानूनी सलाह तुम नहीं लेते? अच्छा सरकार द्वारा छीना हुआ रुपया, ईमानदारी से पूरा पूरा काम आ जाता है क्या? नहीं आ जाता, तो ऊँची बात क्या रही? अगर मानव-सेवा-संघ का सिद्धान्त मान लें कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए तो ज्यादा अच्छी सेवा हो सकती है या टैक्स के द्वारा ज्यादा अच्छी सेवा हो सकती है या सर्वोदय द्वारा ज्यादा अच्छी सेवा हो सकती है। सेवा करने वाला सोचे कि मैं बिना सेवा किए रह ही नहीं सकता। और सेवा जिसको लेनी है वह सोचे कि मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए लेता हूँ।

आज का जो समाजवाद (सोशलिज्म) है, उसमें दुःखी के लिए कोई जिम्मेदारी नहीं दी जाती, केवल सुखी पर ही कानून लागू किए जाते हैं। सुखियों को दुखी बनाया जाता है, दुःखियों को त्यागी नहीं बनाया जाता।

उसका परिणाम यह होता है कि आज के सोशलिज्म की प्रतिक्रिया होती है, प्रतिहिंसा होती है। देखो शुरु के सोशलिज्म में आज कितना परिवर्तन हो गया।

मानव-सेवा-संघ ने यह बात कही कि जो मेरे पास नहीं है वह मुझको नहीं चाहिए और जो मेरे पास है वह मेरी नहीं है। देखो अगर मनुष्य विवेक का आदर करे तो उसको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं है, उसको नेता की आवश्यकता नहीं; उसको बाहर के गुरु की आवश्यकता नहीं। जरा गौर करो अगर मिले हुए को अपना न मानूँ और मिले हुए का दुरुपयोग न करूँ, अप्राप्त की चाह न करूँ तो राष्ट्र की आवश्यकता है क्या? मिले हुए को अपना न मानूँ तो बाहर के गुरु की जरूरत है क्या? और अप्राप्त की कामना न करूँ तो बाहर के गुरु की जरूरत है क्या? ये जो बाहर के गुरु की हम जरूरत अनुभव करते हैं, या राष्ट्र की जरूरत अनुभव करते हैं या नेता की जरूरत अनुभव करते हैं यह कब करते हैं जब विवेक का अनादर करते हैं। अगर मानव-समाज विवेक का आदर करने लग जाय तो राष्ट्र-मुक्त समाज बन जाए, नेतामुक्त समाज बन जाय, गुरुमुक्त समाज बन जाय।

अच्छा अब विचार कर लो। राष्ट्र की बात, नेता की बात, गुरुओं की बात कोई ईमानदारी से मान पाता है क्या? देखो, मुहम्मद एक नेता और गुरु मिला, उसने एक बात कही कि सिवाय खुदा के और कुछ नहीं है। कहा है न, मैं खुदा का दोस्त हूँ और हमें सदैव ईमानदार रहना चाहिए। वर्तमान सभी मुसलमानों ने मुहम्मद की बात मान ली क्या? तो बाहर के गुरु से काम चला क्या? ईसा ने एक बात कही, उसको ईसाइयों ने मान लिया क्या? बुद्ध ने एक बात कही उसको बौद्धों ने मान लिया क्या? हिन्दू आचार्यों ने एक बात कही, उसको हिन्दुओं ने मान लिया क्या? बोलो। तो ईमानदारी की बात क्या है कि बाहर के गुरु की बात, बाहर के नेता की बात, बाहर के राष्ट्र की बात मानव-समाज मान नहीं सका।

मानव-सेवा-संघ ने कहा कि भैया, तुम अपनी बात मानो। मिला हुआ मेरा नहीं है, जो मुझे नहीं मिला, सो मुझे नहीं चाहिए। अगर यह बात हम मान लेते हैं तो हमें योग की, निर्विकारता की, उदारता की प्राप्ति होती है। तो मानव-सेवा-संघ ने कहा कि, हे मानव! तुम सही मानव हो जाओगे कब? जब विवेक का आदर करोगे तब, जब उदार बनोगे तब, जब प्रेमी बनोगे तब। जब धर्मात्मा बनोगे तब।

मनुष्य प्रेमी भी हो सकता है। मनुष्य उदार भी हो सकता है। मनुष्य स्वाधीन भी हो सकता है। मनुष्य धर्मात्मा भी हो सकता है। हो सकता है कि नहीं? कैसे हो सकता है? उपाय क्या है?

विवेक का आदर करो। देखो जो हमारी प्रार्थना है उसमें है—"ज्ञान गुरु मम हृदय विहारी" निज ज्ञान को ही विवेक कहते हैं। विवेक को ही ज्ञान कहते हैं। तो ज्ञान रूपी जो गुरु हैं उसकी बात मान लोगे तो शरीर रूपी गुरु की जरूरत नहीं पड़ेगी। पड़ेगी क्या?

अच्छा धर्मात्मा हो गए, योग मिल गया, मुक्त हो गए। यहाँ तक तो विवेक ने साथ दिया। अब जब मुक्त हो गए तो मुक्त होने से और धर्मात्मा होने से क्या फायदा हुआ। धर्मात्मा होने से आप संसार के काम आ गए और मुक्त होने से क्या फायदा हुआ? आपकी संसार से निवृत्ति हो गई। क्या राय है? तो बातें हो गईं। धर्मात्मा होने से आप जगत् के काम आ गए, विवेकी होने से आप मुक्त हो गए।

लेकिन एक बात तो बताओ, यह ज्ञान का प्रकाश जो आपको मिला यह कहाँ से आया? यह किसी कर्म का फल तो हो नहीं सकता क्योंकि कर्म करने की स्वाधीनता तो मनुष्य होने के बाद मिलती है न। तो आपको जिसने मानव-जीवन दिया यह मानव-जीवन किस कर्म का फल हुआ?

कर्म का फल हो सकता है? नहीं हो सकता। जिसने आपको मानव-जीवन दिया, उसको स्वीकार करने का नाम आस्था का तत्त्व कहा। मनुष्य में आस्था का तत्त्व है—मानने की शक्ति।

देखिए विवेक कहते हैं जानने की शक्ति, बल कहते हैं करने की शक्ति और आस्था कहते हैं मानने की शक्ति। तो मानने की शक्ति से आपने अपने रचयिता को स्वीकार किया। किस लिए? किस लिए स्वीकार किया? प्रेमी होने के लिए। देखिए, मुक्ति का आनन्द अविनाशी है, योग का आनन्द अविनाशी है लेकिन प्रेम का आनन्द अनन्त है। तो मुक्त होने के बाद जो आपने यह स्वीकार किया कि, परमात्मा अपना है, अपने में है, अभी है इसके लिए भक्ति की आवश्यकता हुई। मुक्ति के लिए बाहर के संसार की आवश्यकता नहीं हुई, शान्ति के लिए संसार की सहायता की जरूरत नहीं हुई, धर्मात्मा होने के लिए संसार की सहायता की जरूरत नहीं हुई, लोक-संग्रह के लिए संसार की सहायता की जरूरत नहीं पड़ी, जीवन-मुक्ति के लिए संसार की सहायता की जरूरत नहीं पड़ी, चिर-शान्ति के लिए संसार की सहायता की जरूरत नहीं पड़ी। तब मुक्त होकर भक्त ने कहा कि जिसने तुझे यह मानव-जीवन दिया वह तुम्हारा अपना है, तुझमें है और अभी है। यह बात विवेक से सिद्ध नहीं है। बोलो। विवेक से सिद्ध कर तो दो। जीवन-मुक्ति भी विवेक से सिद्ध है, सर्वदुःखों की निवृत्ति भी विवेक से सिद्ध है, चिर शान्ति भी विवेक से सिद्ध है, धर्मात्मा होना विवेक से सिद्ध है, पर प्रभु अपना है, अपने में है अभी है यह प्रभु-विश्वास से सिद्ध है। और विश्वास की सामर्थ्य आप में है। विश्वास का जो तत्त्व है वह तो आपमें है ही।

अगर विश्वास का तत्त्व आपमें न हो तो संसार का काम चला तो दो। माँ बच्चे से कहे एम ए एन मैन, मैन माने आदमी, तो बच्चा माँ का विश्वास ही तो करता है। कहने का मेरा मतलब है कि विश्वास का जो तत्त्व है उसके लिए विश्वासी गुरु की आवश्यकता है। चाहे विश्वासी गुरु की वाणी मान लो और चाहे कोई जीवित प्रभु-विश्वासी मिल जाए उसकी वाणी मान लो। जिन सन्तों के शरीर नहीं है, उनकी वाणी मौजूद है।

ऐसे भी सन्त हो सकते हैं जिनका शरीर भी हो और वाणी भी हो। तो प्रभु-विश्वासी गुरु की आवश्यकता पड़ी केवल इस बात के लिए कि हम परमात्मा के अस्तित्व को मान लें।

मानने की शक्ति हम में है, जानने की शक्ति हम में है और करने की शक्ति हम में हैं। मानने की शक्ति का उपयोग है परमात्मा को स्वीकार करना। किसलिए? परमात्मा से कुछ माँगने के लिए नहीं। क्योंकि परमात्मा ने मुक्ति के लिए विवेक का प्रकाश दे दिया और धर्मात्मा होने के लिए विवेक का प्रकाश दे दिया। सेवा करने के लिए बल का तत्त्व दे दिया। बल और विवेक के द्वारा परमात्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

कुछ लोग कहते हैं कि झूठे ईश्वरवाद ने अनीश्वरवाद को जन्म दिया है। साइन्टिस्ट (वैज्ञानिक) भी तो यह कहते हैं कि बिना ईश्वरवाद के हमारा काम चल जाता है। वास्तव में साइंस की पहुँच ईश्वर तक नहीं है। साइन्स तो केवल बल की वृद्धि करती है। जैसे, अभी मैं बोल रहा हूँ, साइंस के द्वारा यह आवाज हजारों मील तक जा सकती है। शरीर से होने वाले काम में साइन्स मदद करती है। उससे आगे साइन्स मदद करती है क्या? नहीं करती न? तो साइन्स एक प्रकार का बल है। और बल के दुरुपयोग से हानि होती है, बल के सदुपयोग से सेवा होती है। तो साइन्टिस्ट (वैज्ञानिक) अगर विवेकी नहीं है तो नुकसान कर सकता है कि नहीं? इसलिए बल को विवेक के अधीन होना चाहिए। यहाँ तक तो आपका काम बिना परमात्मा को माने भी चल सकता है। परमात्मा को माने बिना आप शान्ति पा सकते हैं, आप मुक्ति पा सकते हैं, आप धर्मात्मा हो सकते हैं।

आप अगर इतने को ही जीवन मान लें तब तो परमात्मा को मानने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। परन्तु इससे आगे के जीवन की भी यदि

माँग हो कि हमें तो वह जीवन चाहिए कि हमको इतना सुन्दर जिसने बनाया उस अपने बनाने वाले के लिए भी हम उपयोगी होना चाहते हैं तब प्रभुविश्वासी गुरु के द्वारा प्रभु-विश्वास को स्वीकार करो। परमात्मा को अपना मान लो, अपने में मान लो और अभी मान लो। प्रभु अपना है, अपने में हैं, अभी है यह प्रभु-विश्वासी गुरु के द्वारा आप मान लो।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि प्रेमी होने के लिए प्रभु-विश्वास की आवश्यकता होगी। मुक्त होने के लिए विवेक का आदर काम देगा। शान्ति पाने के लिए विवेक का आदर काम देगा। धर्मात्मा होने के लिए विवेक का आदर काम देगा। क्रियात्मक सेवा के लिए बल काम देगा। क्रियात्मक सेवा बिना बल के नहीं हो सकती। विवेक का आदर करना, विश्वास में विकल्प न करना और बल का सदुपयोग करना—इसको ही सत्संग बताया। बल के सदुपयोग से जीवन जगत् के लिए, विवेक के आदर से जीवन अपने लिए और विकल्परहित विश्वास से जीवन प्रभु के लिए उपयोगी हो सकता है। यह सत्संग की महिमा है।

■■■■■■

- *प्रेमपात्र के विरह तथा तत्त्व-विचार से हृदय शुद्ध कर लो।*
- *भलाई का चिन्तन भलाई से भी अधिक भलाई है, क्योंकि चिन्तन से दृढ़ता आ जाती है।*
- *विषय-चिन्तन मिटाने के लिए भगवत्-चिन्तन का स्वभाव बनाओ।*
- *स्वार्थ-भाव मिटाने के लिए सेवा करने का स्वभाव बनाओ, क्योंकि सेवा करने से स्वार्थ-भाव मिट जाता है।*

साधना-पथ की बाधाएँ : देहाभिमान और अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन

मानवमात्र को ज्ञान का प्रकाश मिला है। ज्ञान का प्रकाश उसे कहते हैं, जिसके द्वारा आप जानते हैं। आप सोचिए जो शरीर आपको मिला है उसको आप 'मैं' कहते हैं क्या? मेरा शरीर कहते हैं कि मैं शरीर कहते हैं? मेरा हाथ कहते हैं कि मैं हाथ कहते हैं? मेरा कान कहते हैं कि मैं कान कहते हैं? मेरी आँख कहते हैं कि मैं आँख कहते हैं? जिसको यह कहते हैं, उसको मैं कह सकते हैं क्या? तो पहले आप अपने ज्ञान के प्रकाश में—ज्ञान का प्रकाश अपना है यह भ्रम है, ज्ञान किसी का नहीं है—ऐसा लगता है कि शरीर को हम 'यह' करके अनुभव करते हैं। अच्छा तो जो 'यह' है, उसका नाम मैं नहीं हो सकता और जिस पर मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, वह मेरा नहीं हो सकता। कोई भाई, कोई बहन, बड़े से बड़े वैज्ञानिक हों, बड़े से बड़े कलाकार हों यह सिद्ध कर सकते हैं कि मिले हुए शरीर पर किसी का स्वतन्त्र अधिकार है। स्वतन्त्र अधिकार है ही नहीं। तो जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं होता, वह मेरा नहीं होता।

तो मैं भले ही अपने को न जानता हूँ, मान लो थोड़ी देर के लिए, इतना तो जानता ही हूँ कि मैं शरीर नहीं हूँ; शरीर मेरा नहीं है। इतना हम सब को ज्ञान है या नहीं कि शरीर मेरा नहीं है। मैं शरीर नहीं हूँ। अगर यह ठीक है तो यह ज्ञान टिकता क्यों नहीं? इसका प्रभाव क्यों नहीं अपनाते कि शरीर मेरा नहीं है। हमने यह बचपन में सुना था। असल में आजकल का साधक सत्संग तो करता ही नहीं, सच्चर्चा सुन लेता है। साधक कहते ही उसको हैं जिसे इस ज्ञान की कभी विस्मृति ही नहीं होती। प्रत्येक परिस्थिति में वह उस ज्ञान के प्रकाश में सजग रहता है। ज्ञान तो वही है जिसका सदा प्रभाव रहे।

हमने सुना था एक कोई जैण्टलमैन, सूटेड, बूटेड, सजे धजे जा रहे थे। उधर से कोई देहाभिमान से रहित निज आनन्द में मस्त महात्मा आ रहे थे। दोनों टकरा गए। सूटेड-बूटेड जो होते हैं; देहाभिमानी जो होते हैं उनको क्रोध बड़ी जल्दी आता है। इसका मतलब यह नहीं कि सूट पहनने से क्रोध आता है। यानी जो शरीर को सजाते हैं, उन देह को सजाने वालों को देहाभिमान ज्यादा रहता है। तो उनको क्रोध आ गया। कहने लगे, तुम नहीं जानते मैं कौन हूँ?" महात्मा ने बड़े प्यार से कहा, 'जी हाँ।' 'क्या जी हाँ'। "भली-भाँति जानता हूँ।" "क्या भली-भाँति जानते हो?" वह क्रोध में बोले जा रहे हैं किन्तु महात्मा ठण्डे होकर बोल रहे हैं कि मैं जानता हूँ कि उत्पत्ति के समय आप वह हैं जिसको देखकर उल्टी आती है, वर्तमान में मल-मूत्र की थैली हैं और अन्त में ख़ाक की ढेरी हैं। सरकार, मैं आपकी तीनों बुनियादों को जानता हूँ।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि ज्ञान के आदर से, ज्ञान के प्रभाव से देहाभिमान का नाश होता है। तप से देहाभिमान का नाश नहीं होता। योग्यता से देहाभिमान का नाश नहीं होता। जब तक आप ज्ञान का आदर नहीं करेंगे देह-अभिमान नाश नहीं होगा। तो तप क्या निरर्थक है। निरर्थक नहीं है। तप से सामर्थ्य आती है। तप से शक्ति का सम्पादन होता है, लेकिन देहाभिमान का नाश जब कभी होगा, तब ज्ञान के आदर से होगा। और उस ज्ञान के आदर से होगा, जिस ज्ञान का प्रकाश तुम्हें आ रहा है। कहाँ से आ रहा है, कौन दे रहा है, इन बातों का तो गम्भीर विवेचन होगा कभी।

मैं आज तो यह निवेदन कर रहा हूँ कि इस ज्ञान के प्रकाश में हमने यह अनुभव किया, कि शरीर पर मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, ज्ञान के प्रकाश में हमने यह अनुभव किया कि शरीर 'मैं' नहीं है "यह" है। ज्ञान के प्रकाश में ही हमने यह अनुभव किया कि शरीर का सृष्टि से विभाजन

नहीं है। शरीर का मालिक वही है, जो सृष्टि का मालिक है, मैं इस शरीर का मालिक नहीं हूँ। यह बात जिसने स्वीकार की उसका देहाभिमान नाश होगा।

अब इसमें काल की अपेक्षा नहीं है। जब आपने यह बात जान ली तो इसमें काल की अपेक्षा नहीं है। फिर किस बात की अपेक्षा है, इसमें अपने निरीक्षण की अपेक्षा है, कि मैं कहीं ज्ञान का अनादर तो नहीं करता हूँ। अगर आकर किसी ने मुझे सम्मान दिया तो मुझे हर्ष होता है कि नहीं। अगर किसी ने मेरा अपमान किया तो मुझे क्षोभ होता है कि नहीं। अगर सम्मान से हर्ष होता है और अपमान से क्षोभ होता है तो मैं देह के साथ मिल गया, ज्ञान का अनादर मैंने कर दिया। तो अपने को सजग रहना है, अपना निरीक्षण करना है कि क्या कारण है कि सम्मान से मुझको हर्ष होता है और अपमान से मुझको दुःख होता है। सुख मुझको पसन्द आता है और दुःख मुझको नापसन्द आता है इसका क्या कारण है। तो साफ मालूम होगा कि ज्ञान के अनादर से होने वाला देहाभिमान इसका कारण है।

तो अपनी भूल को जानना और उसको न दोहराना यह मानव-सेवा-संघ की साधन-प्रणाली है। हमें मालूम हो गया कि सम्मान से हमको सुख मालूम होता हैं और अपमान से हमको दुःख मालूम होता है। रुचि-पूर्ति से हमको सुख होता है, रुचि-अपूर्ति से हमको दुःख होता है। अनुकूलता से हमें सुख होता है, प्रतिकूलता से हमें दुःख होता है। यह बात अगर हमें मालूम हो गई तो यह हमारी भूल है। हमें भूल का त्याग करना होगा। अपनी भूल के त्याग का बल कहाँ से आएगा? प्रभु-विश्वासी कहेगा कि हम सर्व समर्थ प्रभु से प्रार्थना करेंगे। पुरुषार्थी कहेगा कि हम दृढ़ संकल्प करते हैं कि भूल नहीं करेंगे।

मानव-सेवा-संघ का दूसरा नियम आप समझते हैं न कि 'की हुई भूल को न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वास पूर्वक प्रार्थना करना'।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि प्रार्थना और दृढ़ संकल्प यह आपका पुरुषार्थ है कि मैं की हुई भूल को कभी नहीं दोहराऊँगा, मैं ज्ञान का अनादर नहीं करूँगा। प्रार्थना के साथ दृढ़ संकल्प भी करें। दृढ़ संकल्प का मतलब है कि हम यह मनन करें कि हमारे जीवन की माँग है कि हम भूल-रहित हो जायें और कोई हमारे जीवन की माँग नहीं है। अगर इस तरह का दृढ़ संकल्प करके आप भूल-रहित होने का व्रत लेंगे और सृष्टि के मालिक से, सृष्टि के प्रकाशक से, सृष्टि के आधार से, सृष्टि के ज्ञाता से सर्व के साक्षी से प्रार्थना करेंगे और स्वयं विश्वास करेंगे।

प्रार्थना का अर्थ क्या होता है? प्रार्थना माने माँग। और माँग उसे कहते हैं जो काम को खा जाए। आप किसी ख़ास विधि-विधान से प्रार्थना करें, वह तो आप जाने, हमारा कोई विरोध नहीं है। लेकिन प्रार्थना माने अपनी माँग को स्ट्रोंग (तीव्र) करना। अब मैं भूलरहित हुए बिना चैन से नहीं रहूँगा बल्कि किसी दूसरे काम का आरम्भ ही तब करूँगा जब मैं भूल-रहित हो जाऊँगा। इस प्रकार की दृढ़, अविचल आवश्यकता का नाम प्रार्थना है। चाहे आप ईश्वरवादी है तो भी करनी होगी, भौतिक-वादी हैं तो भी करनी होगी, अध्यात्मवादी है तो भी करनी होगी। क्योंकि माँग ही काम को खाती है। बड़ा भारी सत्य यह है कि माँग जो है वह काम का नाश कर देती है। और जिस वक्त माँग काम का नाश कर देती है उसी वक्त स्वतः पूरी हो जाती है। जिस प्रकार, जब अग्नि काष्ठ को सर्वांश में भस्म कर देती है तो अग्नि रहती है या बुझ जाती है? बुझ जाती है। इसी तरह से जिस समय हमारी वास्तविक माँग काम को भस्मीभूत कर देती है, स्वतः पूर्ण हो जाती है।

काम माने क्या? वही पराश्रय वाला सुख, वही परिश्रम वाला सुख। किसी ने कोई कठोर शब्द कह दिया तो दुःखी हो गए, सम्मान दे दिया तो खुश हो गए। तो यह जो पराश्रय और परिश्रम से होने वाला सुख है उसी को काम कहते हैं। काम जब नाश हो जाता है तब हरि-आश्रय वाला

आनन्द, स्व-आश्रय वाला आनन्द, निराश्रय वाला आनन्द आपको मिल जाता है। भौतिकवादी हैं तो निराश्रय हो जाइये, अध्यात्मवादी हैं तो स्व-आश्रय लीजिए, शरणागत हैं तो हरि-आश्रय लीजिए। हरि-आश्रय से और विश्राम से, स्व-आश्रय से और विश्राम से, निराश्रय से और विश्राम से जो जीवन मिलता है वही जीवन जीवन है। क्यों? उस जीवन में अभाव नहीं है, उस जीवन में नीरसता नहीं है उस जीवन में पराधीनता नहीं है।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि देहाभिमान साधक के जीवन की एक बाधा है। उसी प्रकार अप्राप्त परिस्थिति का जो चिन्तन है वह भी बड़ी बाधा है। प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग से सभी परिस्थितियों से अतीत, अविनाशी, स्वाधीन जीवन की प्राप्ति होती है। तो फिर अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन हम क्यों करते हैं—इस सम्बन्ध में भी साधक महानुभावों को गंभीरता से विचार करना चाहिए। परिस्थिति एक प्रकार का प्राकृतिक न्याय है। और प्राकृतिक न्याय जो होता है, वह अपने विकास के लिए होता है, विनाश के लिए नहीं होता।

इसलिए हमें प्राप्त परिस्थिति का ठीक-ठीक सदुपयोग करना चाहिए। आगे-पीछे के चिन्तन में फँसकर कोई लाभ नहीं होगा। यह साधक के जीवन की बाधा है। आप कहेंगे ऐसा हम क्यों सोचते हैं। ऐसा इस लिए सोचते हैं कि साधक का जो साध्य है वह अनुत्पन्न हुआ तत्त्व है, वह उत्पत्ति-विनाश-रहित है। और जो उत्पत्ति-विनाश-रहित है, उसकी प्राप्ति उसके द्वारा नहीं हो सकती, जो उत्पत्ति-विनाश-युक्त है। हाँ यह तो हो सकता है कि जो उत्पत्ति-विनाश-युक्त है उसका ठीक सदुपयोग करें तो उत्पत्ति और विनाश पूर्ण परिस्थितियों से ऊपर उठ सकते हैं, उनसे अतीत हो सकते हैं।

किन्तु यह नहीं हो सकता कि जीवन का सत्य उसको मिलेगा, जिसका शरीर बहुत बलवान हो। यह भी नहीं हो सकता कि जीवन का सत्य उसको मिलेगा कि जिसमें बहुत योग्यता हो। अच्छा है, शरीर बलवान

होगा तो बहुत लोगों की सेवा करेंगे, अधिक योग्यता है तो अयोग्यों की सेवा करेंगे। यह हो सकता है। अल्प सामर्थ्य वाला होगा, तो अल्प सामर्थ्य से सेवा करेंगे। विशेष सामर्थ्य वाला होगा तो विशेष सामर्थ्य से सेवा करेंगे। पर यह नहीं हो सकता कि विशेष सामर्थ्य होने से तो उसे जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति होगी और अल्पसामर्थ्य से नहीं होगी। ऐसा नहीं हो सकता।

अतः हमें अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन नहीं करना चाहिए अपितु प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग के लिए अथक प्रयास करना चाहिए। कल्पना करो कि एक मेरे जैसा अन्धा रोगी आदमी है और एक आप जैसा स्वस्थ और आँखों वाला आदमी है। अन्तर कहाँ पड़ेगा? अगर अन्धा आदमी देखने की वासना को छोड़ सके, तो क्या उसे वह जीवन नहीं मिलेगा, जो अगोचर है। यह तो परिस्थिति का महत्त्व केवल उन लोगों के जीवन में रहता है कि जिन लोगों को इस दृश्य से भिन्न और कोई है, इसमें आस्था नहीं होती। और आप दृश्य के भीतर भी, परिस्थिति के अन्तर्गत भी विचार करके देखें तो सबल और निर्बल दोनों का मिल कर ही संसार का काम चलता है। केवल सबल से ही नहीं चलता। जहाँ योग्य चिकित्सक चाहिए तो वहाँ रोगी भी तो चाहिए। मान लीजिए कि योग्य चिकित्सक हो और रोगी कोई न हो तो चिकित्सक का काम चलेगा? जहाँ एक सम्पत्तिशाली है वहाँ एक निर्धन भी तो चाहिए। अगर निर्धन न हो तो सम्पत्तिशाली का काम चलेगा?

तो बलवान के साथ निर्बल रहता ही है। सुख के साथ दुःख रहता ही है। इसी सुख-दुःख का नाम, इसी सबलता और निर्बलता का नाम परिस्थिति है। इसलिए अगर हम निर्बल हैं, तो हमको अचाह होना चाहिए। अगर हम सबल हैं, तो हमको उदार होना चाहिए। निर्बल को जो सत्य अचाह होने से मिलता है, सबल को वह सत्य उदार होने से मिलता है।

जो जीवन हमें अचाह होने से मिलता है वही जीवन हमें उदार होने से मिलता है।

इस दृष्टि से अगर देखा जाए तो सभी परिस्थितियाँ साधन-सामग्री के रूप में हैं। परिस्थितियाँ जीवन के रूप में नहीं हैं। क्योंकि ऐसा कोई बल है नहीं, जिसका नाश न हो। बल का नाश होता ही है। ऐसी कोई योग्यता है नहीं जिसमें क्षति न हो। तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि आज हम वर्तमान परिस्थिति पर ध्यान न देकर अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन करने लगते हैं। उसमें ही फँसे रहते हैं। उसमें सुखी-दुःखी होते रहते हैं। तो मानव-सेवा-संघ ने यह बात बताई कि साधक के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करे, लेकिन किसी अप्राप्त परिस्थिति के चिन्तन में न फँसे।

आप कहेंगे कि क्या प्रतिकूलता हमेशा प्रतिकूलता ही रहेगी। ऐसा नहीं है। प्रतिकूलता के सदुपयोग से विकास होता है और अनुकूलता के सदुपयोग से भी विकास होता है। हमसे गलती क्या होती है कि हम परिस्थिति को ही जीवन मान लेते हैं। हम अपने जीवन का मूल्यांकन परिस्थिति के आधार पर करने लगते हैं। अमुक व्यक्ति बहुत बड़े आदमी हैं, क्या बात है साहब? "कई मिल उनके पास हैं।" तो अगर मिल होने से कोई बड़ा आदमी है तो मिल बड़ा आदमी है कि आदमी बड़ा आदमी है। क्या राय है? मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यह भ्रम हम साधु-समाज में भी होता है। साधु-समाज क्या सोचता है कि चलो कैलाश की यात्रा कर आयें तो विशेषता आ जाएगी अथवा नंगे रहेंगे तो विशेषता आ जाएगी। यह तो कह सकते हैं कि कम सामान रखें तो आराम रहेगा। जिसको पराई कमाई खाना है; जिसको समाज के आश्रित रहना है उसकी जरूरतें कम से कम हो। अच्छी बात है यह, लेकिन जब तक नंगे नहीं रहेंगे तब तक जीवन का सत्य नहीं मिलेगा; जब तक वन में नहीं रहेंगे

जीवन का सत्य नहीं मिलेगा यह सब भ्रम है। क्योंकि वन में भी आप हमेशा नहीं रह सकते। उसमें भी परिवर्तन आएगा। घर में भी आप हमेशा नहीं रह सकते उसमें भी परिवर्तन आएगा। कोई भी वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य एक सी नहीं रह सकती, उसमें परिवर्तन आएगा ही।

इसलिए हमें अपनी वर्तमान परिस्थिति का सहज और ठीक-ठीक अध्ययन करना चाहिए और फिर उसका सदुपयोग करना चाहिए। जीवन उसे नहीं कहते, जो उत्पन्न हो और नाश हो जाए। उसका नाम जीवन नहीं है। वह हमारा साध्य नहीं है। वह हमारा लक्ष्य नहीं है। परमात्मा उसे नहीं कहते, जो किसी वस्तु विशेष द्वारा प्राप्त हो अथवा जो किसी योग्यता विशेष के द्वारा प्राप्त हो। किसी सामर्थ्य विशेष से जो चीज मिलती है, उसे परमात्मा नहीं कहते। परमात्मा उसे कहते हैं, जिसकी प्राप्ति विश्वास से होती है। शान्ति उसे कहते हैं, जिसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है। सर्वदु:खों की निवृत्ति किसी परिस्थिति से नहीं होती, अचाह होने से होती है।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि हमारा विकास किसी परिस्थिति के आश्रित नहीं है। यदि हम चाहें तो प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग द्वारा सभी परिस्थितियों से अतीत जो अविनाशी-स्वाधीन जीवन है उसको प्राप्त कर सकते हैं। अगर हम पसन्द करें तो चाहे परिस्थिति कैसी भी हो। अगर हमारी समझ में यह बात आ जाती और मानव-समाज इस सत्य को मान लेता कि परिस्थिति-परिवर्तन की अपेक्षा परिस्थिति के सदुपयोग का बड़ा महत्त्व है तो हर भाई-बहन के जीवन में एक उत्साह जगता; एक चेतना आती कि मैं वह जीवन पा सकता हूँ, जो कभी भी किसी को मिला है। यह चेतना यदि आ जाती तो उसकी प्राप्ति में कोई विकल्प नहीं रहता, कोई संदेह नहीं रहता उसकी माँग तीव्र हो जाती। हम सब में अपने लक्ष्य की माँग तीव्र हो जाती और जब माँग तीव्र हो जाती है तो काम नाश हो जाता है। काम जब नाश हो जाता है तो माँग पूरी हो जाती है।

इस दृष्टि से अगर विचार किया जाए तो हमें वह जीवन मिल सकता

है, जिस जीवन में अभाव नहीं है, अशान्ति नहीं है, नीरसता नहीं है, पराधीनता नहीं है। वह जीवन हम सब को मिल सकता है, क्योंकि हम मानव हैं।

मानव होने की क्या विशेषता है? मानव होने का अर्थ यह है कि हमें ज्ञान का प्रकाश मिला है; हमें विश्वास का तत्त्व मिला है, हमें बल का तत्त्व मिला है। जो बल का तत्त्व मिला है वह तो निर्बलों की सेवा के लिए है। सेवा में यह नहीं कहा जाता कि जिसके पास विशेष सामर्थ्य होगी उसकी सेवा का विशेष फल होगा और अल्प सामग्री से जो सेवा की जाएगी उसका अल्प फल होगा। ऐसा नहीं होता। सेवा का फल समान होता है। चाहे किसी तृषावन्त को अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक गिलास पानी पिला दो और चाहे सम्पत्तिशाली होकर वाटर वर्क्स बना दो। चाहे एक साधारण विद्यार्थी की साधारण सेवा कर दो और चाहे एक विश्वविद्यालय बना दो। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। सेवा का अर्थ ही है कि सेवक का हृदय सुखासक्ति से रहित होकर, स्वाधीन हो जाता है। सुख की आसक्ति उसमें नहीं रहती। सेवक में फल की आसक्ति भी नहीं रहती।

सेवा का फल सच पूछिए तो त्याग और प्रेम है। अगर आपके जीवन में सेवा है तो आपको त्याग और प्रेम मिलेगा ही। यह न सोच लिया जाए कि जो आदमी गद्दी पर बैठा हुआ सेवा का कार्य कर रहा है, दूसरों को आज्ञा दे रहा है, उसकी बड़ी सेवा है और जो आज्ञा मान रहा है उसकी छोटी सेवा है। ऐसा भ्रम नहीं रहना चाहिए। चौकीदार की सेवा का जो फल मिलेगा, प्राइम मिनिस्टर की सेवा का वही फल बनेगा। एक साधारण स्थिति के आदमी का जो फल बनेगा, एक असाधारण स्थिति के आदमी का भी वही फल बनेगा। क्योंकि सेवा में सेवक को कुछ लेने की बात नहीं होती, जो अपने पास है वह देने की बात होती है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि क्या हम लोग इस वास्तविकता पर परस्पर विचार करने को राजी हैं? सुनने को तो राजी है, सुनने के लिए

तो आप आते ही हैं। हमें विचार करना चाहिए कि हमारा शरीर यदि कमजोर हो गया है; धन का अभाव हो गया है तो क्या हमें वह जीवन नहीं मिल सकता जो वस्तु, व्यक्ति, अवस्था और परिस्थिति के आश्रित नहीं है। इस तरह से अगर हम सजग हो जाएँ; सावधान हो जाएँ तो साधक के जीवन एक बहुत बड़ी बाधा दूर हो जाए।

साधक ऐसा सोचते रहते हैं कि कुटिया अच्छी मिल जाए तो भजन बनेगा, आसन ठीक है तो भजन बनेगा, भिक्षा ठीक मिल गई तो भजन बनेगा; यह बिल्कुल भ्रम है। क्यों? जिनको सब कुछ ठीक मिल गया उनका भजन बन गया क्या? अरे भजन तो तब बनेगा जब हम अपने सेव्य को, जिसका हमें भजन करना है, उसमें अपनी आत्मीयता स्वीकार कर लेंगे। अचाह होंगे तब भजन बनेगा, स्वाधीन होंगे तब भजन बनेगा। क्या वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य से भजन बनेगा? वह नहीं बनता। स्वाधीन होने से भजन बनता है, अचाह होने से भजन बनता है, प्रेमी होने से भजन बनता है। प्रेम किसी परिस्थिति से तो बनता नहीं है। प्रेम तो मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत माँग है।

क्या आप यह नहीं जानते हैं कि अगर कोई प्रेमी होता है तो उसके प्रति आपका स्वाभाविक आकर्षण होता है। अपने-अपने प्रेमियों के प्रति लोगों का आकर्षण होता है कि नहीं? और जो सभी का प्रेमी हो; विश्व का भी और विश्वनाथ का भी तो उसके प्रति सभी का आकर्षण नहीं होगा? क्या आप और हम इस बात में पराधीन हैं कि हम सभी को प्यारभरी दृष्टि से देखें, प्यार भरी वाणी से बोलें, प्यार भरे कानों से सुने। इसमें कोई पराधीनता तो है नहीं।

प्रेमी सबको प्रिय होते हैं। ऐसे ही आप देखिए कि जो स्वाधीन होता है, अचाह होता है वह भी सबको प्रिय होता है। ऐसे ही जो उदार होता है, वह भी सबको प्रिय होता है। तो उदारता, स्वाधीनता और प्रेम, ये मनुष्य के मौलिक तत्त्व हैं। इनकी प्राप्ति किसी परिस्थिति पर निर्भर

नहीं है। क्या राय है? तो हमारे जीवन का जो सबसे अच्छा चित्र है, जो सर्वोकृष्ट चित्र है कि हम उदार होकर सर्वप्रिय हों, हम स्वाधीन होकर सर्वप्रिय हों, हम प्रेम से भरपूर होकर सर्वप्रिय हों यह जो जीवन का सत्य है क्या यह किसी परिस्थिति पर टिका हुआ है? नहीं टिका हुआ है। हमसे गलती यह होती है कि हम परिस्थिति के सहारे साधना के पथ में आगे बढ़ना चाहते हैं।

मैं यह नहीं कहता हूँ कि आप अपनी सुखमय परिस्थिति को दुःखमय बना लें। ऐसा मेरा मतलब नहीं है। मेरा मतलब है कि परिस्थिति आपकी चाहे जैसी हो लेकिन उसके दो ही अर्थ होंगे—या तो आप किसी अंश में सुखमय परिस्थिति का अनुभव करेंगे अथवा किसी अंश में दुःखमय परिस्थिति का अनुभव करते होंगे। सुखमय परिस्थिति में आपको क्रियात्मक सेवा करनी चाहिए और दुःखमय परिस्थिति में आपको भावात्मक सेवा करनी चाहिए। जो क्रियात्मक सेवा का फल होता है वही भावात्मक सेवा का फल होता है। लेकिन आप यह कहें कि सुखमय परिस्थिति होगी तो हम बहुत-सा दान करेंगे, बहुत-सा काम करेंगे उससे हमें बड़ा लाभ होगा। तो बड़ा लाभ नहीं होगा। लाभ उतना ही होगा जितना अल्प से होगा। अल्प सामर्थ्य के सदुपयोग से जो लाभ होता है, विशेष सामर्थ्य के सदुपयोग से भी वही लाभ होता है। अल्प योग्यता के सदुपयोग से जो लाभ होता है, विशेष योग्यता के सदुपयोग से भी वही लाभ होता है। क्यों? मनुष्य जो सामर्थ्य में, योग्यता में, वस्तुओं में फँस गया है; उनके अधीन जो हो गया है तो उनसे ऊपर उठने में ही उसका परम लाभ है।

ऐसा तो आपने देखा नहीं होगा दुनिया में कभी भी जो कुछ न जानता हो, कुछ न मानता हो, कुछ न करता हो। देखा है क्या? कुछ जरूर कर सकता है, कुछ जरूर करता है, कुछ जरूर जानता है, कुछ जरूर मानता है। ये जो तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं ये आंशिक रूप में हों तो

क्या, कम हों तो क्या, विशेष हों तो क्या? हमसे गलती क्या होती है कि ये शक्तियाँ विशेष हों तो बहुत लाभ होगा, यह झूठा भ्रम है। और जब तक यह झूठा भ्रम नहीं मिटेगा तब तक यह कहना कि परमात्मा सभी का है; सभी को मिल सकता है, यह सिद्ध नहीं होगा। चिरशान्ति सभी को मिल सकती है, धर्मात्मा सभी हो सकते हैं। यह काल्पनिक बात नहीं है? अगर आप परिस्थिति के अधीन ये चीजें मानें तो फिर सभी धर्मात्मा भी नहीं हो सकते सब जीवनमुक्त भी नहीं हो सकते, सब भगवत्-भक्त भी नहीं हो सकते। और अगर आप परिस्थिति के आश्रित नहीं मानेंगे तो जो सत्य किसी परिस्थिति के आश्रित नहीं होता, वह सब परिस्थितियों में प्राप्त होता है। किसी न किसी प्रकार की परिस्थिति हम सब को प्राप्त है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि साधक के जीवन की यह बहुत बड़ी बाधा है कि वह अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन करता रहता है। और इसका परिणाम यह होता है कि वह प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग नहीं कर पाता। क्योंकि शक्ति तो उतनी ही है। जो शक्ति आपको मिली है उसे आपने अप्राप्त परिस्थिति के चिन्तन में खो दिया तो समय घटेगा या बढ़ेगा?

इसलिए अप्राप्त परिस्थिति के चिन्तन में जो समय हम लगा देते हैं, शक्ति लगा देते हैं वही शक्ति, वही समय यदि हम प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग में लगा दें तो हम सब को वह जीवन मिल जाए तो सभी परिस्थितियों से अतीत है और विलक्षण है।

लेकिन हमसे बड़ी भारी गलती यह होती है कि हम प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग नहीं करते और परिस्थिति के आश्रित होकर या तो सुख की दासता में बँध जाते हैं या दुःख के भय में आबद्ध हो जाते हैं। सुख की दासता में बँधा रहना अथवा दुःख के भय में आबद्ध हो जाना मानव-जीवन का बहुत बड़ा अनादर है। मानव के जीवन का बहुत बड़ा अपमान है।

अत: सुख है तो उसको दु:खियों में बाँट देंगे, दु:ख है तो त्याग को अपना कर उससे ऊपर उठ जाएँगें। हमें सुख की दासता और दु:ख के भय में आबद्ध नहीं होना चाहिए।

आज हमसे गलती क्या होती है कि हम दु:ख के प्रभाव को नहीं अपनाते और सुख का सदुपयोग नहीं करते। नतीजा यह होता है कि किसी न किसी अंश में हम सुख की दासता और दु:ख के भय में आबद्ध हो जाते हैं। जब तक हम सुख की दासता और दु:ख के भय में आबद्ध रहेंगे तब तक, आप सोचिए तो सही, वह जीवन, जो सुख-दु:ख से अतीत है; जिसमें किसी प्रकार की दासता और भय का प्रवेश ही नहीं है मानव को कैसे मिलेगा? क्या सिद्ध हुआ कि हमें सुख-दु:ख का सदुपयोग करना चाहिए।

जबकि सुख-दु:ख दोनों ही साधन-सामग्री हैं यानी अनुकूलता और प्रतिकूलता सभी परिस्थितियाँ साधन-सामग्री हैं तब हमें इस बात की क्यों चिन्ता करनी चाहिए कि हमें प्रतिकूल परिस्थिति क्यों दे दी हैं; हमें अनुकूल परिस्थिति क्यों नहीं दी। यह चिन्तन तभी तक होता है साधक के जीवन में, जब तक साधक वास्तविक जीवन की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करता।

जब तक वह सुख की दासता में फँसा हुआ है तभी तक वह दु:ख से भयभीत है। अगर वह सुख की दासता में न फँसे, तो दु:ख के भय से भयभीत होने की आवश्यकता ही नहीं है। अत: हमारी परिस्थिति चाहे कैसी भी क्यों न हों, हमें धीरज पूर्वक, उत्साह पूर्वक, श्रद्धापूर्वक सत्य का आश्रय लेकर प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करना चाहिए। एक बार हमने सुना लोगों से—पं० जवाहर लाल के निकटवर्ती लोगों से—उन्होंने पूछा कि "जवाहर भाई, जब आपके सामने कोई विपत्ति आती है, जैसे, पिता की मृत्यु, पत्नी की मृत्यु, माता की मृत्यु, आप आत्मा-परमात्मा को तो मानते

नहीं, तब क्या उपाय करते हैं?" तो जवाहर लाल जी ने बड़ा अच्छा उत्तर दिया, उन्होंने कहा कि भई देखो जब मेरे सामने जैसी कठिनाई आती है उसमें जो राह मुझे दिखाई देती है, मैं चल देता हूँ।

तो मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ कि आप परिस्थितियों के फेर में न पड़े। प्राप्त परिस्थिति के अनुसार सुख-दुःख का दुरुपयोग न करें। दुःख का दुरुपयोग क्या है? उसके भय में आबद्ध होना। सुख का दुरुपयोग क्या है? उसकी दासता में आबद्ध होना। सुख-दुःख का सदुपयोग करें; अनुकूलता-प्रतिकूलता का सदुपयोग करें। हर प्रकार की परिस्थिति आयेगी—कभी अनुकूल आवेगी, कभी प्रतिकूल आवेगी, हमें उसका सदुपयोग करना चाहिए। हर परिस्थिति के सदुपयोग से परिस्थिति से अतीति का जीवन मिलता है। इस बात में किसी भाई को, किसी बहन को विकल्प हो तो सोच लो। वह कौन-सा तत्त्व है, जो परिस्थिति से मिलता है। कोई बतावे तो हम जानें। लेकिन आप लोगों ने तो सुनने का शौक पैदा किया है और फिर अकेले-अकेले सब बोलना चाहते हैं। बैठकर जीवनोपयोगी विचार-विनिमय में आप सब लोग चुप हो जाते हैं। यह गलत तरीका है।

मानव-सेवा-संघ कोई प्रोपैगण्डा नहीं है। मानव-सेवा-संघ तो साधकों का संघ है। और साधक-समाज को परस्पर में विचार-विनिमय जरूर करना चाहिए। क्योंकि विचार-विनिमय करने से आपका सत्य आपके सामने आएगा। हमसे गलती क्या होती है कि हम अपने सत्य की अपने सामने न रख कर, अपने सत्य को दूसरों को समझाना चाहते हैं। हमें अपने सत्य को स्वयं अपनाना चाहिए और जैसे-जैसे हम अपने सत्य को अपनाते चले जाएँगे वैसे-वैसे हमारा विकास होता जाएगा। और जैसे-जैसे हमारा विकास होगा वैसे-वैसे समाज को एक उदाहरण देखने को मिलेगा, समझने

को मिलेगा और सोचने को मिलेगा। और इससे दूसरों में उत्साह पैदा होगा।

तो सबसे बड़ा उपदेशक कौन है? जो जीवन से उपदेश करता है। वही सबसे बड़ा वक्ता है, सबसे बड़ा पंडित है और सबसे बड़ा सुधारवादी है। और सबसे घटिया कौन है? जो पर-चर्चा करके उपदेश करता रहता है। कभी परिस्थितियों की चर्चा और कभी व्यक्तियों की चर्चा ही वह करता है। तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि साधक के लिए क्या उपयोगी है? प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग। क्या बाधक है अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन अथवा अप्राप्त परिस्थिति का आवाहन।

अब थोड़ी देर गौर करें आप, बड़ी गम्भीर बात है कि अगर आप अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन छोड़ दें और प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करें तो आपको विश्राम मिलेगा या नहीं मिलेगा? अवश्य मिलेगा। तो जब विश्राम की प्राप्ति होती है तब योग की भी प्राप्ति होती है, बोध की भी प्राप्ति होती है, प्रेम की भी प्राप्ति होती है।

प्रश्न—महाराज जी मैं अपने जीवन की एक बात कहता हूँ, इसमें आदत का भी कुछ असर है।

उत्तर—आदत तो बनती है पंडित जी, प्रमाद से।

पंडित जी—जो कुछ भी है अगर आदत पड़ गई? आजकल सुखद परिस्थितियों को देने की बड़ी चेष्टाएँ हो रही हैं।

स्वामी जी—इस विषय में तो मैंने बहुत सोचा है। जब मैं राजनैतिक काम करता था तो इसी भाव को लेकर करता था कि विदेशी सत्ता चली जाएगी तो देश सुन्दर हो जाएगा। मैं तो आपसे यह निवेदन करता हूँ कि मैं कोई आन्दोलन नहीं करना चाहता, क्रान्ति पसन्द करता हूँ। मनुष्य के जीवन में यह क्रान्ति आनी चाहिए कि जैसी भी हमारी परिस्थिति है, चाहे

इसका कारण कुछ भी हो—भाग्य मान लो या समाज मान लो हमें इससे कोई मतलब नहीं—लेकिन गरीबी का सदुपयोग करने पर गरीबी नहीं मिटेगी तो किसी अमीर की अमीरी छीनने से कभी नहीं मिटेगी। इसी तरह मैं सोचता हूँ कि अगर अल्प सामर्थ्य का सदुपयोग आप नहीं कर सकते तो विशेष सामर्थ्य का सदुपयोग आप कर ही नहीं सकते। अल्प सुख का अगर आप सदुपयोग नहीं कर सकते तो विशेष सुख का सदुपयोग आप कर ही नहीं सकते। इसलिए जो भी परिस्थिति आपको प्राप्त है—यह तो व्यक्तिगत बात है न किसी को दुःख प्राप्त है किसी को सुख प्राप्त है—उसके सदुपयोग में ही आपका विकास निहित है।

.....

- *उस सुख का त्याग कर दो, जो किसी का दुःख हो।*
- *उस दुःख को प्रसन्नता पूर्वक अपनाओ जिससे किसी का हित हो।*
- *सत्य जीवन की जितनी रक्षा करता है उतनी और कोई कर नहीं सकता।*
- *असत्य से जितनी क्षति होती है उतनी और किसी से नहीं होती है।*

प्रभु-प्रेम की विलक्षणता

प्रेमी होने से साधक प्रभु के लिए उपयोगी हो जाता है। देवकी जी ने जो अन्तिम बात कही थी वह यह थी कि प्रभु को मानव-हृदय का प्रेम इतना भाता है, इतना अच्छा लगता है कि वह असीम, अनन्त, अपार, अखण्ड होते हुए भी प्यार को लेकर प्रसन्न हो जाता है और उसे कई गुना बढ़ा देता है। परमात्मा माने क्या? जिसको जो दें वह कई गुना होकर अपने पास आ जाए उसको परमात्मा कहते हैं। अगर परमात्मा खा लेते तो लोग भोग लगना बंद कर देते। परमात्मा के माने हैं कि उसको जो दिया जाए, वह कई गुना होकर अपने पास आ जाए। इस संसार का भी यही स्वरूप है। आप खेत में एक दाना डालते हैं। अगर खेत एक दाने को लेकर एक ही दाना वापस करता तो भी लोग खेत बोना छोड़ देते। खेत कई गुना करके वापस करता है तब न आप खेत को पसन्द करते हैं। जब दूसरों के साथ की हुई भलाई भी कई गुनी होकर अपने साथ होती है तो भगवान को अर्पित किया हुआ भी कई गुना होकर अपने पास आता है। भगवान को क्या अर्पित करोगे? क्या करोगे? अपने आपको ही तो दोगे। अपने अहं को ही तो अर्पित करोगे। मम को तो अर्पित करोगे। मेरा कुछ नहीं है यही तो भगवत्-पूजा है। मुझे कुछ नहीं चाहिए यही तो भगवत्-पूजा है। प्रभु अपने हैं यही तो भगवत्-पूजा है। मैं प्रभु का हूँ, यह भगवत्-पूजा है।

अगर आप इस पूजा को कर सकते है, तो आपके हृदय में प्रभु-प्रेम की अभिव्यक्ति होगी। गुरु-वाणी ने यह बताया कि प्रेमी और प्रेमास्पद का जो नित्य विहार है, वही प्रभु-विश्वासी का जीवन है। यानी आपका आपा है प्रेम, और प्रभु हैं प्रेमास्पद। आपका प्रेम भी अविनाशी तत्त्व है और प्रेमास्पद भी अविनाशी तत्त्व है। प्रेम भी अनन्त तत्त्व है और प्रेमास्पद

भी अनन्त तत्त्व है। प्रेम भी चिन्मय तत्त्व है और प्रेमास्पद भी चिन्मय तत्त्व है। प्रेम और प्रेमास्पद में जातीय एकता है। एक ही जाति के दोनों हैं। तो जिसमें प्रेम का उदय होता है वह प्रेमी, प्रेम से अभिन्न हो जाता है और प्रेम प्रेमास्पद को रस देने में समर्थ हो जाता है। यह विलक्षणता मानव-जीवन में ही है। मानव जीवन में यह जो विलक्षणता है वह मानव की अपने द्वारा उपार्जित नहीं है। मानव के रचयिता ने ही आपको इतना सुन्दर बनाया है कि आप प्रभु को रस देकर, प्रभु का कार्य करके प्रभु-प्रेम के पात्र हो सकते हैं। प्रभु हम सब के प्रेम-पात्र हैं।

इसलिए भाई, जो सदैव है, सर्वत्र है, जो सभी का है, वही अपना है, वही अपने में है, वही अभी है। परमात्मा गैर हाजिर नहीं, मौजूद है। ऐसा नहीं है कि परमात्मा हमसे कहीं अलग हो गया है। जो हमसे कभी अलग न हो उसी का नाम तो परमात्मा है। तो परमात्मा कभी किसी से अलग होता ही नहीं है। इसलिए मेरा यह निवेदन था कि आप इस बात की चिन्ता न करें कि हमारा अल्प जीवन है, हममें अल्प योग्यता है, अल्प सामर्थ्य है।

आप दुनिया के ठेकेदार न बनिए, दुनिया के सेवक बनिए। मालिक बनोगे तो पकड़े जाओगे। दुनिया के सहयोगी बनें, दुनिया के सहायक बनें। दुनिया के मालिक न बनें। मालिक बनोगे तो कुछ नहीं कर पाओगे। इसलिए सब कुछ प्रभु का है। मैं भी प्रभु का ही हूँ। मैं अनाथ नहीं हूँ क्योंकि प्रभु का हूँ। यह संसार अनाथ नहीं है क्योंकि प्रभु का है। सब कुछ प्रभु का है, मैं भी प्रभु का हूँ—यह विश्वास से सिद्ध होगा। यह ज्ञान से सिद्ध नहीं होगा।

तो ज्ञान पूर्वक संसार से सम्बन्ध का त्याग करो और विश्वास पूर्वक परमात्मा से सम्बन्ध स्वीकार करो। सम्बन्ध तोड़ना और सम्बन्ध जोड़ना

दो ही काम तो तुम्हें करने हैं। संसार का सम्बन्ध तोड़ दो ज्ञानपूर्वक और परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लो विश्वास पूर्वक। संसार से सम्बन्ध तोड़ने से तीन बातें हो जाएँगी—सर्वदु:खों की निवृत्ति, चिरशान्ति, जीवन-मुक्ति। ये तीन बातें तो आप परमात्मा को नहीं माने, परमात्मा की चर्चा न करें केवल संसार का सम्बन्ध ही तोड़ दें तो भी सर्वदु:खों की निवृत्ति, चिरशान्ति और जीवन-मुक्ति आपको मिल जाएगी। और अगर परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लें तो आपको भक्ति मिल जाएगी। तो भक्ति एक रस है और वह रस इतना मधुर है, इतना सुन्दर है कि इस रस के लिए निर्विशेष ब्रह्म अवतरित होता है, प्रकट होता है। और यदि यह कह दिया जाय भक्तों की भाषा में कि ब्रह्म जीव-भाव को प्राप्त हो जाता है। सर्वदु:खों से निवृत्ति, चिरशान्ति और मुक्ति का ऐसा रस है कि इसमें जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त होता है। तो ज्ञान से जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त होता है और विश्वास से ब्रह्म जीव-भाव की प्राप्त होता है। जीव नहीं होता, जीव-भाव को प्राप्त होता है—प्रेम रस का पान करने के लिए।

.....

- *अहम् के नाश में अनन्त सामर्थ्य निहित है।*
- *संसार से निराश होने में ही संसार के स्वरूप का ज्ञान निहित है।*
- *जिसके न होने की वेदना है वह होने लगता है और जिसके होने की वेदना है वह अपने आप मिट जाता है।*
- *कार्य उसी का सिद्ध होता है जो दूसरों के काम आता है।*
- *जिसकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं रहती उसी की माँग सभी को होती है।*

विश्व-शान्ति

विश्वशान्ति का अर्थ क्या है? जब व्यक्तिगत शान्ति हो तो विश्वशान्ति हो सकती है। अगर परस्पर में संघर्ष न हो तो शान्ति रह सकती है। परस्पर में संघर्ष कब न हो? जब मनुष्य इतना सुन्दर हो जाए कि उसके द्वारा किसी के अधिकार का अपहरण न हो अपितु सभी के अधिकारों की रक्षा हो। जब तक यह बात हर भाई के, हर बहन के जीवन में नहीं आती तब तक विश्व-शान्ति एक कल्पना है; वास्तविकता नहीं है।

आप विचार कीजिए मनुष्य क्या कर सकता है। तो कम से कम जो कर सकता है वह यह है कि जानी हुई बुराई न करे, की हुई न दोहराये, किसी को बुरा न समझे, किसी का बुरा न चाहे, किसी के साथ बुराई न करे। यह बात व्यक्तिगत रूप से हरेक भाई और बहन अपने जीवन में अपनाये। मैं इस सम्बन्ध में यह कहना चाहता हूँ कि बुराई-रहित जो होना है यही विश्व-सेवा है। अगर कोई यह चाहता है कि मैं सेवा करना चाहता हूँ, तो मेरे जानते हुए, मन-वाणी-कर्म से जीवन में अपनी जानी हुई बुराई नहीं करनी चाहिए और की हुई बुराई न दोहराई जानी चाहिए। तो बुराई-रहित होना विश्व-सेवा है।

इसके बाद स्वतः अपने आप किसी न किसी अंश में भलाई होने लगती है। यह जो होने वाली भलाई है, यह समाज-सेवा है, परिवार-सेवा है। यह सही सेवा है किन्तु इस होने वाली भलाई का अभिमान और फल न चाहे तो वह अप्रयत्न हो जाता है। अप्रयत्न का अर्थ क्या है? अचाह हो जाओ। बुराई-रहित होकर विश्व की सेवा करे, भलाई करके समाज की सेवा करे और अचाह होकर अपनी सेवा करे। अगर यह बात आपको अपनी बात मालूम पड़े—मेरी बात नहीं—तो इसमें जीवन का सत्य है।

अगर मैं चाहता हूँ कि मुझे कोई बुरा न समझे, तो मैं कभी किसी को बुरा नहीं समझूँगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई बुरा है या नहीं है। अगर आप शान्ति के पुजारी हैं और व्यक्तिगत जीवन में शान्ति चाहते हैं, पारिवारिक जीवन में शान्ति चाहते हैं, सामाजिक जीवन में शान्ति चाहते हैं तो इसका उपाय है—हम किसी को बुरा न समझें। आप कहेंगे जो हमारे साथ बुराई करता है तो हम उसे बुरा क्यों न समझें। तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि बुराई कोई क्यों करता है, इस पर सोचा जाए। बुराई कोई इसलिए करता है कि उसने अपने को बुरा बना लिया है। तो जब तक कोई बुरा न बन जाए तब तक उसके द्वारा बुराई नहीं होती।

आज का मानव सही रूप में अपने को मानव मानने को राजी नहीं होता। कोई अपने को जाति के साथ बताएगा, कोई वर्ग के साथ बताएगा, कोई किसी मजहब के साथ बताएगा, किसी इज्म के साथ बताएगा। 'मैं मानव हूँ' यह कोई नहीं बताता। मानव होने का अर्थ क्या हैं? मानव होने का अर्थ यह है कि आपमें तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। आपमें कुछ बल का तत्त्व है, उसके द्वारा आप कुछ करते हैं। एक ज्ञान का तत्त्व है, उसके द्वारा आप कुछ जानते हैं और एक आस्था का तत्त्व है, उसके द्वारा आप कुछ मानते हैं।

मानने का तत्त्व आपमें पहले से है तभी आप मानते हैं। आप विचार करके देखिए, आपने पढ़ा एम ए एन मैन, मैन माने आदमी। मैन माने आदमी होता है यह बात हम मानते हैं न। इसका मतलब क्या हुआ? कि प्रत्येक भाई अथवा बहन में आस्था का तत्त्व हैं; मानने का तत्त्व है। ऐसे ही जानने का तत्त्व है, ऐसे ही करने का तत्त्व भी है। तो आप कुछ मान सकते हैं, कुछ जान सकते हैं; कुछ कर सकते हैं।

ये तीन प्रकार की शक्तियाँ प्रत्येक भाई के जीवन में है, प्रत्येक बहन के जीवन में हैं। आप पढ़े-लिखे हैं या बगैर पढ़े हैं, आप किस वर्ग के

हैं, किस देश के हैं, किस मजहब के हैं, किस इज्म के हैं, आपका दार्शनिक दृष्टिकोण क्या है यह अलग-अलग होने पर भी ये तीन शक्तियाँ प्रत्येक मानव में हैं। यह बात हम सब मानते हैं या नहीं?

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि ये तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। इन मिली हुई शक्तियों का दुरुपयोग न करें, तो शक्तियों का दुरुपयोग न करने से विश्व में शान्ति होगी। विश्व में शान्ति तो हो सकती है परन्तु जो हम सोचते हैं कि विश्व-शान्ति हमारे दर्शन से हो जाए या हमारे किसी प्रोग्राम से हो जाए यह भ्रम है।

तो विश्वशान्ति कब होगी? जब प्रत्येक भाई में, प्रत्येक बहन में यह चेतना आ जाए कि मैं मानव पहले हूँ, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, पारसी, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट और जाने क्या क्या पीछे हूँ। मैं बल का दुरुपयोग नहीं करूँगा क्योंकि मैं मानव हूँ; इन्सान हूँ। अब आप सोचिए, आप कोई भलाई करें न करें उससे समाज में अशान्ति नहीं होती लेकिन जब आप बुराई करते हैं तब अशान्ति होगी या नहीं। आप विचार कीजिए अशान्ति का कारण भलाई न करना नहीं है, बल्कि बुराई करना है।

तो अगर हम और आप इस बात को मान लें कि हम बुराई नहीं करेंगे चाहे हमसे भलाई बनें या न बने लेकिन बुराई बिल्कुल नहीं करेंगे तो आप विश्वशान्ति में पूरा पूरा भाग ले रहे हैं और विश्व-शान्ति में आपका पूरा सहयोग है। क्यों? क्योंकि आपने बुराई करना छोड़ दिया यों। तो बुराई करना छोड़ना जो होता है उसमें दो बातें होती हैं। करने की बात में हम स्वाधीन नहीं रहते, सामर्थ्य के अनुसार ही काम कर सकते हैं। जैसे जब तक मैं चाहूँ बोलने में स्वाधीन नहीं हूँ; न बोलने में मैं स्वाधीन हूँ कि नहीं? तो तात्पर्य क्या निकला; जीवन का सत्य क्या निकला? जीवन का सत्य यह है कि हम बुराई न करें। और अगर हम यह निर्णय कर लें कि कोई चाहे भला हो या बुरा हो, हम बुराई नहीं करेंगे

क्योंकि दूसरे के सम्बन्ध में पूरी जानकारी तो होती नहीं और कोई आदमी सदैव एक-सा रहता नहीं। आज आपने मुझे बुराई करते देखा और बुरा मान लिया। मान लीजिए मैंने बुराई छोड़ दी तो आपका निर्णय गलत हो गया या नहीं। दूसरे के सम्बन्ध में जो हम लोग राय कायम करते रहते हैं यह बड़ी भ्रमात्मक धारणा है। बड़ी भारी भूल है।

यह जीवन का सत्य है कि दूसरे के सम्बन्ध में हमको पूरी जानकारी नहीं होती इसलिए हम कोई राय कायम नहीं करेंगे। अर्थात् हम किसी को बुरा नहीं समझेंगे। इसमें आपको शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। इसमें आपको कोई प्रयास नहीं करने पड़ेंगे आपको अपने द्वारा अपने पर शासन करना होगा; अपने द्वारा अपने को समझाना-बुझाना होगा; अपने को बताना होगा कि भई देखो दूसरों के सम्बन्ध में राय कायम करना ठीक बात नहीं है। इसलिए हम पहले यह स्वीकार करें कि हमें अधिकार नहीं है किसी को बुरा समझने का।

देखिए बुराई करने वाला बुराई से छूट जाता है लेकिन दूसरों को बुरा समझने वाला बुराई से नहीं छूटता और उससे बराबर बुराई होती रहती है, क्योंकि वह दूसरे को बुरा समझता है। इसलिए शान्ति के लिए पहली बात क्या है? हम किसी को बुरा नहीं समझेंगे। दूसरे नम्बर की बात है कि हम किसी का बुरा नहीं चाहेंगे, तीसरा नम्बर आता है कि हम बुराई नहीं करेंगे। तो बुराई करना छोटी बुराई है, दूसरों का बुरा चाहना उससे बड़ी बुराई है और किसी को बुरा समझना सबसे बड़ी बुराई है।

तो अगर आप यह चाहते हैं कि विश्वशान्ति का प्रश्न हल हो जाए; कल्पना न रहे, स्वप्न न रहे तो हम सबको इस बात का व्रत लेना होगा कि हम किसी को बुरा नहीं समझेंगे। आप कहेंगे कि हमने अपने लिए यह व्रत ले लिया तो क्या होगा, विश्वशान्ति कैसे हो जाएगी? इस सम्बन्ध में आप और विचार करें। और विचार यह है कि जो चीज हमारे आपके

जीवन में आ जाती है वह चीज व्यापक हो जाती है; विभु हो जाती है; वह चीज फैल जाती है।

इसलिए जब कोई सोचता है कि बुराई नहीं करूँगा, उससे विश्व-शान्ति के लिए बहुत बड़ा काम होता है। आप विचार करके देखें, जो चीज ज्यादा सूक्ष्म होती है वह ज्यादा व्यापक होती है। और जो स्थूल होती है वह सीमित होती है। जैसे जब मैं वाणी से बोलता हूँ तो जीभ की अपेक्षा मन का संकल्प सूक्ष्म है और जो सबसे ज्यादा सूक्ष्म है वह हमारा अहं है। तो मैं किसी को बुरा नहीं समझूँगा क्योंकि मैं मानव हूँ। मानव को विश्व-शान्ति में भाग लेना चाहिए अथवा अपना निर्माण करना चाहिए। अपना निर्माण जो होता है, वह दूसरों को बुरा न समझने से होता है; दूसरों का बुरा न चाहने से होता है। उसका फल होता है, जो किसी को बुरा नहीं समझता, जो किसी का बुरा नहीं चाहता उसके द्वारा बुराई होना बन्द हो जाता है। यह एक वैधानिक तथ्य है। एक कानून है यह। जब बुराई होना बन्द हो जाता है तब क्या होगा? देखिए, जब हम बुराई नहीं करेंगे तब क्या करेंगे! दो बातें होंगी—या तो आप भलाई करेंगे या न करने की स्थिति में होंगे।

यह जो न करने की स्थिति है, यह बड़ा सूक्ष्म तत्त्व है। इससे अपना कल्याण होता है। सही करने की जो प्रवृत्ति है उससे विश्वशान्ति होती है। सही काम करने से समाज में शान्ति होती है। यानि विश्व में शान्ति होती है। और न करने से अपना कल्याण होता है। यह एक अनुपम विधान है। यह एक ऐसा अनुभूत सत्य है कि हम सब प्रत्येक परिस्थिति में विश्वशान्ति अथवा अपने कल्याण में सहयोगी हो सकते हैं। देखिए, परिस्थिति पिता-पुत्र की एक-सी नहीं होती, सहोदर बन्धुओं की एक-सी नहीं होती, सहोदर बहनों की एक-सी नहीं होती। परिस्थिति प्रत्येक व्यक्ति की बिल्कुल व्यक्तिगत होती है। योग्यता में भेद, रुचि में भेद, परिस्थिति में भेद होता है।

तो मैं यह निवेदन कर रहा था कि करने की स्थिति में बाह्य रूप अलग-अलग होगा। जैसे, कल्पना करो एक फैक्ट्री है। उस फैक्ट्री में एक इन्जीनियर भी है, एक मैनेजर भी है, एक कैमिस्ट भी है, एक ओरगेनाइजर भी है, एक क्लर्क भी है। ये इतने लोग है इन सबसे मिल कर फैक्ट्री चलती है। अगर अब कोइ कहे हम तो फैक्ट्री जब चलाएँगे जब सब समान हो जाएँगे। तो यदि सब क्लर्क हो जाएँ तब फैक्ट्री चलेगी? सभी कैमिस्ट हो जाएँ तो फैक्ट्री चलेगी? तो यह जो आज पागलपन फैला है कि दुःखी का दुःख मिटे चाहे न मिटे, पर सुखी तो दुःखी हो ही जाए कम से कम; तो सुखी को दुःखी बना कर जो एकता चाहते हैं, वह गलत है।

होना क्या चाहिए? होना यह चाहिए कि आप यह अनुभव करें कि फैक्ट्री मेरी है, लेकिन जो काम मुझे मिला है, वह इतना अच्छा करूँगा कि दूसरा कोई न कर सके। यह ही कैमिस्ट अनुभव करे, यही क्लर्क अनुभव करे, यही मैनेजर अनुभव करे। यही मिल-ओनर भी अनुभव करे कि मुझे मिलओनर का काम मिला है तो मैं इतना अच्छा काम करूँगा कि कोई दूसरा न कर सके। और योग्यता के अनुसार सबकी अर्थ-व्यवस्था हो। जो उस अर्थव्यवस्था के बाद बचे, वह मिल-ओनर की निज की सम्पत्ति होकर पुत्र इत्यादि में ही बँट जाए, सो नहीं। मिल चलता रहे इतना तो मिल-ओनर को चाहिए। अगर मिल की सम्पत्ति से मिल चलना बन्द हो जाए तो उसका नाम बदल जाएगा। गवर्नमैंट की तरफ से कोई न कोई मुकर्रर (नियुक्त) हो जाएगा। कानून यह है कि आदमी रहेगा तो ईमानदार रहेगा। तो हम सबको यह मानना चाहिए कि सारी सृष्टि एक इकाई है।

जब हर आदमी यह सोचेगा कि मेरी जो ड्यूटी है; मुझे जो कर्त्तव्य मिला है उसे मैं पूरी ईमानदारी से निभाऊँगा और मेरा अधिकार क्या है? उस पर थोड़ा विचार करना चाहिए। मेरा अधिकार है कि मैं शान्ति पा

जाऊँ। आज आप लोग इस बात को भूल गए हैं। कोई कानून आज तक ईमानदारी फैला नहीं सका। कोई मजहब आज तक शान्ति नहीं ला सका। मानव-सेवा-संघ ने यह बताया कि अगर आप विश्वशान्ति चाहते हैं तो आपके जीवन के दो भाग है—एक आपका बाह्य जीवन जिसको सत्संग के रूप में आप जी रहे हैं और एक आपका आन्तरिक जीवन जिसको आप शान्ति के रूप में देखें। अगर आपको व्यक्तिगत रूप से शान्ति मिल गई है तो आपका बाह्य सत्संग ठीक चल रहा है और अगर आप व्यक्तिगत रूप से अशान्त हैं तो सत्संग ठीक नहीं हुआ।

आजकल यह हो रहा है कि व्यक्तिगत जीवन में तो अशान्ति बढ़ती जाती है और आप विश्व-शान्ति के गीत गाते चले जाते हैं। यह कभी होने वाला नहीं है। अगर व्यक्तिगत जीवन में शान्ति आ जाए तो विश्वशान्ति की समस्या हल हो सकती है। तो व्यक्तिगत शान्ति तब बढ़ेगी जब आपको इस बात में पूरा भरोसा हो कि किसी भी काम को करने के अन्त में जो न करने की स्थिति आती है और काम को करने के पूर्व जो न करने की स्थिति आती है उस न करने की स्थिति में जो जीवन है वह मेरा अपना जीवन है। और काम करने में जो जीवन है, वह सामाजिक जीवन है। अगर आप यह नहीं मानेंगे कि मैं एक मिल का मालिक होते हुए समाज का प्रतिनिधि हूँ तो आप शान्ति के साम्राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते। समाज का हर आदमी विश्व-शान्ति में पूरा-पूरा भाग लेने वाला है। यानी हर आदमी इसमें भाग लेगा तब शान्ति होगी।

इसके लिए हर आदमी को सोचना होगा कि मैं अपने कर्त्तव्य से दूसरों के अधिकार की रक्षा करूँगा। विश्व क्या है? जरा विचार कीजिए। और व्यक्ति क्या है? व्यक्ति है समाज के अधिकारों का पुंज और समाज क्या है व्यक्ति के कर्त्तव्यों का पुंज। तो जब तक व्यक्ति और समाज का जो प्राथमिक सम्बन्ध है, जो अटूट सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध जब तक आदमी

अनुभव नहीं करेंगे तब तक न तो व्यक्तिगत जीवन में शान्ति होगी, न पारिवारिक शान्ति होगी, न सामाजिक शान्ति होगी और न विश्वशान्ति होगी। आप विचार करके देखिए।

जब आप अनेक कल्पनाओं को मानते हुए भी अनेक भावनाओं को मानते हुए भी इस बात को मानेंगे कि भाई वास्तव में मूलभूत रूप में तो मैं मानव हूँ। क्यों? मैं इसलिए मानव हूँ कि मैं दूसरों के अधिकार की रक्षा करूँगा। मैं इसलिए मानव हूँ कि मैं अधिकार को समाज पर छोड़ कर अपने में जो अपना जीवन है उसको प्राप्त करूँगा।

देखिए, आप विचार करके देखिए कि, किसी के दान से किसी की दरिद्रता नाश नहीं होती, किसी की उदारता से किसी का दु:ख नाश नहीं होता। आपके जीवन का दु:ख तभी नाश होगा जब आप अपने में सन्तुष्ट होंगे। अपने में सन्तुष्ट कब होंगे? जब आप इस बात को मान लें कि कर्त्तव्य का सम्बन्ध संसार के साथ है और योग का सम्बन्ध अपने साथ है। मैं बोल-चाल की भाषा में कहूँ, कि करने का सम्बन्ध संसार के साथ है और न करने का सम्बन्ध अपने साथ है। न करने में जीवन है यह बड़े रहस्य की बात है, यह बहुत ऊँचा दर्शन है। न करने में जीवन है जब तक यह सत्य आपके सामने नहीं आएगा और करने में विश्व-जीवन है, हमारा बाह्य रूप विश्व के साथ है, तब तक विश्वशान्ति का प्रश्न हल नहीं होगा।

चाहे हम कुछ भी छोटे से छोटा काम कर रहे हो ऐसा मान कर करें कि विश्व रूपी बाटिका का एक छोटा-सा भाग, मैं भी काम कर रहा हूँ। हर आदमी को इस बात का गौरव हो कि चाहे मैं मजदूर हूँ तो क्या और कोई मिल-ओनर है तो क्या। मैं क्लर्क हूँ तो क्या मैं समाज का उतना ही बड़ा प्रतिनिधि हूँ जितना कोई भी है। लेकिन आज इस बात को भूल जाते हैं और समझने लगते हैं कि मिल-ओनर समाज का बड़ा प्रतिनिधि है और मजदूर छोटा प्रतिनिधि है।

अरे भाई, जरा विचार करके देखो, आपने किसी मशीन को देखा है ? कोई पुर्जा बहुत छोटा है और कोई पुर्जा बहुत बड़ा है। छोटे से छोटे पुर्जे के बिना मशीन चलेगी क्या ? क्या राय है ? शरीर को देखो, सर सबसे ऊँचा रहता है और पैर सबसे नीचे। तो सर बहुत बड़ा हो गया और पैर छोटा हो गया ?

आज मनुष्य, मनुष्य होने में जीवन का गौरव है इस बात को भूल गया और परिस्थिति के आधार पर अपने जीवन का मूल्यांकन करने लगा। मैं बड़ा आदमी इसलिए हूँ कि मेरे पास इतना पैसा है। मैं बड़ा आदमी इसलिए हूँ कि मुझे ऐसा पद मिला है, मैं बड़ा आदमी हूँ क्योंकि मुझमें अधिक योग्यता है। केवल अधिक योग्यता होने से कोई बड़ा आदमी नहीं हो जाता है। जिन्ना साहब के उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है। जिन्ना साहब बहुत बड़े कानून के आदमी थे। किसी ने उनसे पूछा कि तुम तो इस्लाम को मानते नहीं हो। उन्होंने कहा कि मैं तो इस्लाम का वकील हूँ, इस्लाम को मानता थोड़े ही हूँ। बेपढ़े लिखे लोगों ने समझ लिया कि जिन्ना साहब बहुत पढ़े-लिखे हैं। और उनकी यह बात बिल्कुल झूठी साबित हो गई कि दो मजहब के आदमी एक जगह नहीं रह सकते अथवा एक घर में दो मजहब के आदमी नहीं रह सकते। हमने तो यह देखा है कि पत्नी आर्यसमाजी है और पति सनातनधर्मी है। लड़का कबीर पंथी है और भाई कुछ और है। तो परिवार में दो अलग-अलग मत के व्यक्ति रह सकते हैं। और ये बेसमझ आदमी कहते हैं कि एक देश में दो मजहब के आदमी नहीं रह सकते। जब पाकिस्तान में इस बेसमझी की बात को बढ़ाया गया तो लाखों घर बरबाद हुए।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ कि यह मजहब की प्रधानता क्यों ? यह बल की प्रधानता क्यों ? यह सब सत्य से दूर है और इस प्रकार हम शान्ति में भाग नहीं ले सकते। तो करने वाली बात तो यह है

कि तुम भी बुराई-रहित हो जाओ और मैं भी बुराई-रहित हो जाऊँ। तुम अपनी सामर्थ्य के अनुसार भलाई करो, मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार भलाई करूँ।

जो आपका-हमारा फर्ज है उसे पूरा कर दो। आप अपनी परिस्थिति का सदुपयोग करो, मैं अपनी परिस्थिति का सदुपयोग करूँ। इसमें कोई फर्क नहीं हैं। न करने की स्थिति में हम सब एक होंगे या नहीं? गहरी नींद में जाकर हम सब एक हो जाते हैं या नहीं हो जाते? अन्तर्मुख हो जाते हैं या नहीं हो जाते? क्या हम जागृति में अन्तर्मुख हो जाएँगे, स्वप्न में अन्तर्मुख हो जाएँगे? क्या राय है? कभी नहीं हो सकते। तो जैसे गहरी नींद में हम सब एक होते हैं वैसे ही न करने की स्थिति में हम सब एक होते हैं। पढ़ा-लिखा और बेपढ़ा-लिखा, पैसे वाला और बगैर पैसे वाला, बड़े फर्म में बैठा हुआ और छोटे फर्म में बैठा हुआ, गहरी नींद में सब बराबर होते हैं।

उस न करने की स्थिति में क्या है? न करने की स्थिति में जीवन है। जीवन में तीन बातें होती हैं—चेतना होती है, रस होता है और वह अविनाशी होता है। उसे जीवन नहीं कहते जिसका नाश हो जाए, उसे जीवन नहीं कहते जिसमें नीरसता आ जाए, उसे भी जीवन नहीं कहते जिसमें जड़ता हो। जीवन अविनाशी, चेतन तथा रसरूप है। और वह जीवन आपको अपने में सन्तुष्ट होने से मिलता है। और अपने में सन्तुष्ट आप तब होते हैं जब सही काम करके काम-रहित हो जाएँ। इसमें अपनी-अपनी बात है। कोई तो सही काम करके कामरहित होता है और कोई काम-रहित होकर सही काम करता है।

तो जीवन के मूल मंत्र को देखिए कि सही काम करो और आराम करो। आराम करने में जीवन है इस सत्य को भूल गए और सही काम करने से विकास होता है इस सत्य को भूल गए। काम के फल से विकास नहीं होता, विकास होता है सही काम करने से। और सही काम तभी कर

सकते हैं जब इस बात को स्वीकार करें कि हमें जो काम करना है वह समाज के लिए करना है, वह विश्व के लिए करना है। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति विश्व के लिए हो तब हम विश्वशान्ति को कल्पना न मान कर वास्तविकता मानेंगे।

आज यह प्रश्न ही क्यों उठा? आपके मन में यह सन्देह क्यों हुआ। जिसे देखो विश्व-शान्ति की बात करता है। शान्त होकर विश्वशान्ति की बात करो विश्वशान्ति का उपाय करो। लेकिन हम उपाय करते हैं अशान्त होकर। स्वयं अशान्त रह कर विश्वशान्ति के गीत गाते हैं—यह दम्भ है। यह अपने को धोखा देना है। यह कभी होने वाला नहीं है। हाँ, आपके सारे जीवन में यह प्रश्न हो जाए कि भई, जीवन का एक भाग ऐसा होना चाहिए जहाँ मजदूर और मिल-ओनर, पढ़ा लिखा और बेपढ़ा, चपरासी और प्राइम मिनिस्टर सब एक हो जाएँ। ऐसे जीवन में परमात्मा आता है। प्राइम मिनिस्टर को शान्ति और मजदूर को भी शान्ति, चपरासी को शान्ति और मिल-ओनर को भी शान्ति। तो जब तक हम उस जीवन की प्राप्ति नहीं करेंगे, जहाँ जाकर सब एक होते हैं तब तक कभी भी न व्यक्तिगत शान्ति होगी, न पारिवारिक शान्ति होगी और न सामाजिक शान्ति होगी। और यह सब कब होगा? जब स्वयं हम यह मान लें कि सम्पूर्ण विश्व एक इकाई है; यह सारा संसार एक इकाई है।

आप विचार कीजिए। जब तक आप इतनी महानता से नहीं सोचेंगे कि 'यह' एक संसार है और 'वह' एक परमात्मा है तब तक विश्वशान्ति का प्रश्न हल नहीं हो सकता। आप विचार करके देखो—तीन बातें सोचना है—'मैं' हूँ, 'यह' है और 'वह' है। ये तीनों मिल कर एक जीवन है। तो 'यह' की दृष्टि में संसार, 'वह' की दृष्टि में परमात्मा और 'मैं' की दृष्टि में आत्मा। जब तक आप यह न मानेंगे कि प्रत्येक मानव एक विश्व-मानव है, समस्त विश्व एक मानव की अवस्था है; एक मानव की परिस्थिति है। जब तक आप और हम इसके साथ एकता स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक

विश्वशान्ति मात्र एक कल्पना रहेगी।

हमने एकता तो स्वीकार कर ली वर्ग के साथ, तो इससे देश गया, एकता स्वीकार कर ली देश के साथ, तो विदेश गया, एकता तो स्वीकार कर ली प्रान्त के साथ, तो दूसरा प्रान्त गया, एकता तो स्वीकार कर ली इज्म के साथ, तो दूसरा इज्म गया। जब तक हम अनेकानेक कल्पनाओं में बँधे रहेंगे तब तक कभी भी न व्यक्तिगत शान्ति होगी और न विश्व-शान्ति होगी। और अगर हम इस मान्यता पर आ जाएँ कि हम तो मानव हैं, चाहे हम परमात्मा को मानते हों या न मानते हों, संसार को मानते हों या न मानते हों, हैं मानव।

और मानव होने के नाते हमें जो कुछ करना है वह ऐसा नहीं करना है जिससे समाज में संघर्ष हो। जब आप सो कर उठें तो सोचना चाहिए कि आज मैं कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जिससे परिवार में, समाज में संघर्ष हो जाएँ। और कोई ऐसा काम नहीं करूँगा अर्थात् न करने वाली बात नहीं करूँगा। आप देखिए कि आप विश्वशान्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे और आपको स्वयं शान्ति मिलेगी।

मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मनुष्य मात्र का यह अपना प्रश्न हो कि मुझे विश्व-शान्ति का प्रश्न हल करना है तब तो हल हो सकता है। अगर विश्वशान्ति का प्रश्न कोई कम्यूनिज्म से या सोशलिज्म से हल करना चाहता हो तो अब तक तो हुआ नहीं। संसार में अनेक मजहब मौजूद हैं, अनेक इज्म मौजूद हैं फिर भी विश्व में शान्ति नहीं है। आप यह नहीं कह सकते कि कम्युनिस्ट देशों में गरीबी मिट गई, आप नहीं कह सकते कि सम्पन्न देशों का मजदूर रूस के मजदूर से ज्यादा दुःखी है।

मैं आपसे कहता हूँ कि यह एक भ्रमात्मक धारणा है, एक भ्रम ही है कि परिस्थिति बदलने से अशान्ति मिटती है; दुःख मिटता है। परिस्थिति

बदलने से दुःख नहीं मिटता भाई ! मैं आपसे क्या निवेदन करूँ जब देश आजाद नहीं हुआ था तब हम लोगों को यह पूरा विश्वास था कि जब देश आजाद हो जाएगा तो सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। आप ही देख लीजिए आजाद होने पर क्या सारी समस्याएँ समाप्त हो गई ?

अगर ये तीन आदमी सम्हल जाएँ तो सब सम्भल जाएँ। नेता, गुरु और स्त्री यदि सम्हल जाएँ तो सारी सृष्टि सम्हल जाएँ। अगर स्त्री ईमानदारी से कह दे अपने पति से कि हम घटिया साड़ी पहनेंगी, बढ़िया नहीं तुम बेईमानी मत करो तो वह पति बेईमानी नहीं करेगा। यह तो मेरी विनोद की भाषा थी। अब आप मुख्य विषय पर आ जाइये। अगर सचमुच आप यह जानना चाहते हैं कि विश्वशान्ति कल्पना है या वास्तविकता है। अगर आप इसमें भाग लेना चाहते हैं तो वास्तविकता है और अगर आप अपने को बचा कर व्याख्यानों से, मजहब और इज्म आदि से शान्ति चाहते हैं तो कल्पना है। आपके प्रश्न का उत्तर हो गया या नहीं ?

अगर हर भाई, हर बहन के दिल में यह दर्द हो जाए कि विश्व-शान्ति में मुझे भाग लेना है, तो यह कल्पना नहीं है। अगर आप समझते हैं कि मजहब बदलने से, इज्म बदलने से, परिस्थिति बदलने से विश्व-शान्ति हो जाएगी तो यह बिल्कुल भ्रम है क्योंकि परिस्थिति कैसी भी हो सब अभावयुक्त हैं। कोई परिस्थिति शान्ति-दायक नहीं होती। परिस्थिति का सदुपयोग ही शान्ति-दायक होता है। हर परिस्थिति में सुख भी होता है; दुःख भी होता है, दुःख होता है तो सुख भी होता है। इस प्रकार सुख-दुःख का सदुपयोग करना अगर आ जाए तो विश्वशान्ति का प्रश्न हल हो जाएगा। तुम सुखी को देख कर प्रसन्न और दुःखी को देखकर करुणित हो जाओ। आप शरीर को संसार से अलग नहीं कर सकते। शरीर संसार में ही रहा है, संसार में ही रहेगा, संसार से बाहर नहीं जा सकता। तो अगर हम सुखी को देख कर प्रसन्न नहीं होते तो काम का नाश ही नहीं होगा। अगर दुःखी को देख कर करुणित नहीं होते तो भोग की रुचि का

नाश नहीं होगा। और भोग की रुचि का नाश नहीं होगा तो योग कैसे होगा? काम का नाश नहीं होगा तो राम मिलेगा कैसे? काम का नाश हो तब न राम मिले।

तो मैं आपसे यह निवेदन कर रहा था कि जब मनुष्य में दुःखी को देख कर करुणा उदय होती है तब सुखी को देख कर प्रसन्नता होनी चाहिए। करुणा और प्रसन्नता से आपका मन शुद्ध हो जाएगा। करुणा से भी मन शुद्ध होता है और प्रसन्नता से भी मन शुद्ध होता है। प्रसन्नता से काम-नाश होता है इसलिए मन शुद्ध हो जाएगा और करुणा से भोग-वासना नाश हो जाएगी इसलिए मन शुद्ध हो जाएगा। और जब मन शुद्ध हो जाएगा तो आपके व्यक्तिगत जीवन में शान्ति आ जाएगी। और वह व्यक्तिगत जीवन की जो शान्ति है वह जीवन में आ जाने से विभु हो जाएगी, व्यापक हो जाएगी। क्यों? अहं रूपी जो अणु है वह संसार से बहुत सूक्ष्म हैं। देखो, स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् तथा सूक्ष्म जगत् से कारण जगत सूक्ष्म है तथा अहं सबसे ज्यादा सूक्ष्म है। इसलिए यह बात अगर आपके अहं में आ गई कि विश्व शान्ति का प्रश्न मेरा अपना प्रश्न है, उसमें मुझे भाग लेना है तो विश्वशान्ति का प्रश्न अवश्य हल हो जाएगा।

विश्वशान्ति में हम कैसे भाग ले सकते हैं इस सम्बन्ध में चार बातें बताईं—पहली बात यह कि मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित हो जाएँ, फिर परिस्थिति के अनुसार भलाई करें, फिर भलाई के बदले में कुछ न चाहें और फिर प्रभु-प्रेमी होकर रहें। ये चार बातें हैं।

बुराई-रहित होना विश्व-सेवा, भलाई करना परिवार, समाज और शरीर की सेवा, अचाह होना अपनी सेवा और प्रेमी होना परमात्मा की सेवा। आप परमात्मा को मानते हैं या नहीं मानते, इससे कोई मतलब नहीं लेकिन प्रेम को तो मानते हो। प्रेम तो आपको अच्छा लगता है। आपको कोई प्यार करे तो बुरा थोड़ा ही लगता है। और प्रेम देने से कभी घटता है क्या? तो प्रेम प्रभु की सेवा है, अचाह होना अपनी सेवा है,

यथाशक्ति भलाई करना समाज की सेवा है और बुराई-रहित होना विश्व की सेवा है।

तो जब आप विश्व की सेवा करेंगे तब विश्व-शान्ति होगी। परिवार की सेवा करेंगे तो परिवार में शान्ति होगी। अपनी सेवा करेंगे तो आपको व्यक्तिगत शान्ति मिलेगी और प्रेम करेंगे तो शान्ति के ऊपर का जो जीवन है वह आपको प्राप्त होगा। यह जो परमात्मा है वह शान्ति से बहुत ऊपर का है। मुक्ति से भी ऊपर का है। वास्तव में प्रेमी-हृदय में परमात्मा की सेवा होती है, अचाह जीवन में अपनी सेवा होती है, उदार जीवन से संसार की सेवा होती है और यथाशक्ति भलाई करने में परिवार की और समाज की सेवा होती है। तो विश्वशान्ति का प्रश्न हल करना है तो विश्व की सेवा करो, व्यक्तिगत शान्ति का प्रश्न हल करना है तो व्यक्तिगत सेवा करो अर्थात् अचाह होकर रहो और सामाजिक शान्ति का प्रश्न हल करना है तो समाज की सेवा करो, यथाशक्ति भलाई करो अर्थात् जो नहीं कर सकते वह मत करो। देखो सत्संग की परिभाषा यह नहीं है कि आप वह करें जो नहीं कर सकते या आप वह करें जो नहीं करना चाहिए।

तो बल का दुरुपयोग, विवेक का अनादर, विश्वास में विकल्प यह कभी नहीं करना चाहिए। जो नहीं करना चाहिए वह मत करो। जो नहीं कर सकते वह मत करो। क्या नहीं कर सकते? सामर्थ्य-विरोधी बात मत करो; ज्ञान-विरोधी बात मत करो। तो ज्ञान-विरोधी बात करनी नहीं चाहिए। सामर्थ्य-विरोधी बात कर ही नहीं सकते। यदि ज्ञान-विरोधी बात नहीं करेंगे तो बुराई जीवन में नहीं जाएगी और अगर सामर्थ्य-विरोधी बात नहीं करेंगे तो आपके जीवन में निराशा नहीं आएगी। क्यों? जो कर सकते हैं कर दिया, जो करना था वह कर दिया।

उसके बाद कर्त्तव्य का उत्तर पक्ष है योग-विज्ञान। जब आदमी सही काम कर देता है तो योग की प्राप्ति होती है। योग में बोध है और बोध

में प्रेम है। योग-बोध-प्रेम में जीवन है। योग से व्यक्तिगत शान्ति होती है, बोध से आत्मा की शान्ति होती है और प्रेम से प्रभु-भक्ति की अभिव्यक्ति होती है। तो हर भाई को, हर बहन को, योग-बोध-प्रेम की प्राप्ति हो सकती है; भोग-मोह और आसक्ति की निवृत्ति हो सकती है। इस रीति से विश्व शान्ति यदि हमारा आपका सबका अपना प्रश्न हो जाए तब यह प्रश्न वास्तविक है। और जब तक यह प्रश्न हमारा अपना प्रश्न नहीं हो जाता तब तक अमुक परिस्थिति बदल जाएगी तो शान्ति मिल जाएगी, अमुक मजहब फैल जाएगा तो शान्ति मिल जाएगी; तो मैं तो यह मानता हूँ, कि तब तक विश्वशान्ति की बात कल्पना ही कल्पना है।

तो आपको खूब पता चल गया कि परिस्थिति बदलने से अशान्ति नहीं मिट सकती। परिस्थिति के सदुपयोग से अशान्ति मिटा करती है, दु:ख मिट सकता है। इसलिए प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करने से आप विश्वशान्ति में सहभागी हो सकते हैं। और आप अपने में सन्तुष्ट रह कर, प्रेमी होकर रह सकते हैं आप अगर भौतिकवादी हैं तो विश्व प्रेम को पसन्द करो, अध्यात्मवादी हैं तो आत्मरति को पसन्द करो, ईश्वरवादी हैं तो प्रभु-प्रेम को पसन्द करो। तो प्रेमास्पद का नाम बदल जाएगा लेकिन प्रेम तो एक ही रहा न? प्रेम तो एक ही तत्त्व रहा न? तो मनुष्य के विकास में जो प्रेम का विकास है वह अन्तिम विकास है। स्वाधीनता यह दूसरे नम्बर का विकास है और उदारता तीसरे नम्बर का विकास है। यह तीनों प्रकार का विकास जब हो जाएगा तब व्यक्तिगत शान्ति, सामाजिक शान्ति और विश्व-शान्ति का प्रश्न हल हो जाएगा और अगर यह विकास न हुआ तो विश्वशान्ति का प्रश्न एक कल्पना ही है।

■■■■■

सन्त हृदय की करुण पुकार

हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो,
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो,
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।